Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (UPPSC)

विश्व इतिहास

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: UPM07

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (UPPSC)

विश्व इतिहास

दृष्टि The Vision

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 8750187501, 011-47532596
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPPCS DLP

विषय सूची (Contents)

1.	**पुनर्जागरण, धर्म सुधार आंदोलन और प्रबोधन**	**5-16**
1.1	पुनर्जागरण	5
1.2	धर्म सुधार आंदोलन	9
1.3	प्रबोधन	12
2.	**अमेरिकी क्रांति एवं गृहयुद्ध**	**17-24**
2.1	अमेरिकी क्रांति के कारण	17
2.2	अमेरिकी क्रांति के परिणाम	19
2.3	अमेरिकी संविधान का निर्माण	21
2.4	अमेरिकी गृहयुद्ध	22
3.	**फ्राँसीसी क्रांति**	**25-35**
3.1	फ्राँसीसी क्रांति के कारण	25
3.2	क्रांति का उद्‍भव और प्रसार	26
3.3	फ्राँसीसी क्रांति का प्रभाव	29
3.4	नेपोलियन बोनापार्ट	31
4.	**औद्योगिक क्रांति**	**36-43**
4.1	इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति	36
4.2	औद्योगिक क्रांति के परिणाम/प्रभाव	38
4.3	औद्योगिक क्रांति का प्रसार	41
5.	**इटली का एकीकरण**	**44-50**
5.1	इटली के एकीकरण में बाधाएँ	44
5.2	इटली का एकीकरण: सहायक तत्त्व	45
5.3	इटली के एकीकरण के विभिन्न चरण	46
6.	**जर्मनी का एकीकरण और बिस्मार्क**	**51-58**
6.1	बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण: विभिन्न चरण	53
6.2	बिस्मार्क एवं उसकी नीतियाँ	56
7.	**प्रथम विश्वयुद्ध**	**59-70**
7.1	प्रथम विश्वयुद्ध के कारण	59
7.2	प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम	64
7.3	वर्साय की संधि	66

8. 1917 की रूसी क्रांति **71-79**

8.1 रूसी क्रांति के कारण 71

8.2 रूसी क्रांति के परिणाम 74

8.3 लेनिन के आर्थिक सुधार 77

8.4 स्टालिन: नीतियाँ एवं कार्य 78

9. 1929 की वैश्विक आर्थिक मंदी **80-83**

10. फासीवाद और नाज़ीवाद **84-96**

10.1 मुसोलिनी एवं उसकी फासीवादी नीतियाँ 84

10.2 जर्मनी में नाज़ीवाद और हिटलर 89

11. द्वितीय विश्वयुद्ध **97-103**

11.1 द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण 97

11.2 द्वितीय विश्वयुद्ध की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ 99

11.3 द्वितीय विश्वयुद्ध का परिणाम 101

12. 1949 की चीनी क्रांति **104-111**

12.1 चीन में राष्ट्रीय चेतना का विकास 104

12.2 1911 की चीनी क्रांति 108

12.3 1949 की साम्यवादी क्रांति 109

13. शीतयुद्ध **112-124**

13.1 शीतयुद्ध के कारण 112

13.2 शीतयुद्ध की प्रगति एवं विस्तार 114

13.3 देतांत एवं शीतयुद्ध 120

13.4 नाटो 121

13.5 शीतयुद्ध 2.0 122

14. तृतीय विश्व एवं गुटनिरपेक्षता **125-128**

15. सोवियत संघ का विघटन **129-136**

15.1 विघटन के कारण एवं परिणाम 130

15.2 पूर्वी यूरोप में राजनीतिक परिवर्तन 133

16. साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद **137-146**

16.1 साम्राज्यवाद के उद्‌भव एवं इसके विकास के कारण 138

16.2 अफ्रीका में साम्राज्यवाद 140

16.3 एशिया में साम्राज्यवाद 144

17. औपनिवेशिक शासन से मुक्ति **147-155**

17.1 विउपनिवेशीकरण के कारण 147

17.2 अफ्रीकी देशों की औपनिवेशिक शासन से मुक्ति 148

17.3 लैटिन अमेरिकी देशों की औपनिवेशिक शासन से मुक्ति 151

17.4 एशियाई देशों की औपनिवेशिक शासन से मुक्ति 152

18. प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व **156-164**

अध्याय
1

पुनर्जागरण, धर्म सुधार आंदोलन और प्रबोधन (Renaissance, Religious Reform Movements and Enlightenment)

1.1 पुनर्जागरण *(Renaissance)*

पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ होता है- 'फिर से जागना'। यह वह स्थिति है, जब विभिन्न यूरोपीय देशों ने एक लंबी अवधि के उपरांत मध्यकाल के अंधकार युग को त्याग कर आधुनिक युग में दस्तक दी। पुनर्जागरण एक बौद्धिक आंदोलन था, जिसकी शुरुआत 14वीं शताब्दी में इटली से हुई तथा 16वीं शताब्दी तक इसका प्रसार विभिन्न यूरोपीय देशों जैसे-जर्मनी, ब्रिटेन आदि में हुआ। पुनर्जागरण के दो आयाम थे- 'दुनिया की खोज' तथा 'मानव की खोज'। दुनिया की खोज से तात्पर्य यहाँ उन नवीन भौगोलिक खोजों से है, जिनके द्वारा अमेरिका, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया की खोज की गई जबकि 'मानव की खोज' यहाँ पर मध्यकालीन पोपशाही व चर्च के चंगुल में जकड़ी मानव सृष्टि में स्वतंत्र चिंतन शैली के विकास को अभिव्यक्त करती है।

अंधकार युग

तीसरी शताब्दी ई. में प्रसिद्ध रोमन साम्राज्य का विभाजन पूर्वी एवं पश्चिमी रोमन साम्राज्य में हो गया, जिसमें पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया, जबकि पश्चिमी रोमन साम्राज्य की राजधानी रोम थी। जर्मन आक्रमणकारियों से त्रस्त रोमन साम्राज्य का 5वीं शताब्दी में अवसान हो गया और यही वह समय था, जब यूरोप में मध्यकाल का प्रारंभ हुआ तथा सामंतवादी प्रवृत्ति विकसित हुई। मध्यकाल में मुख्य मापदंड थे- राजनीतिक सत्ता के रूप में राजतंत्र का पतन एवं सामंतवाद का उद्भव और विकास, धार्मिक सत्ता तथा सामंत में बेहतर तालमेल एवं उपभोग वर्ग के रूप में उसकी स्थिति, व्यापार-वाणिज्य का पतन तथा समस्त यूरोप में विकास के नाम पर गतिरोध उत्पन्न होना। आमतौर पर इसे अंधकार युग के नाम से जाना जाता है।

उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियों के अनुसार मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि पुनर्जागरण एक ऐसा बौद्धिक एवं उदार सांस्कृतिक आंदोलन था, जिसमें प्राचीन यूरोप से प्रेरणा लेकर नए यूरोप का निर्माण किया जा रहा था तथा तार्किक, आलोचनात्मक व अन्वेषणात्मक प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही थीं। परिणामस्वरूप मनुष्य मध्यकालीन बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्र चिंतन की ओर अग्रसर हुआ, जिससे मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का उन्नयन हुआ जो उस युग की कला, साहित्य, दर्शन एवं विज्ञान आदि क्षेत्रों में प्रकट हुए।

पुनर्जागरण के विभिन्न पहलुओं में तार्किकता, मानवतावादी दृष्टिकोण, वैज्ञानिक प्रगति आदि का विशेष महत्त्व है। इससे समस्त यूरोप में सामंतवाद के खंडहरों पर आधुनिकता का आविर्भाव हुआ।

पुनर्जागरण के कारण *(Causes of renaissance)*

आर्थिक: पुनर्जागरण की शुरुआत में व्यापार एवं वाणिज्य कारकों का विशेष महत्त्व रहा है। भूमध्यसागरीय अवस्थिति का लाभ उठाकर इटली जैसे देश में व्यापार एवं वाणिज्य का विकास हुआ। परिणामत: मुद्रा अर्थव्यवस्था, व्यापारी वर्ग एवं शहरों का उदय हुआ। इटली में वेनिस, फ्लोरेंस, मिलान, नेपल्स आदि जैसे शहर अस्तित्व में आए। शहरों की इस स्थिति ने सामंतवादी व्यवस्था पर चोट की, क्योंकि ये शहरी केंद्र, सामंती एवं सामंतवादी तत्त्वों के हस्तक्षेप से वंचित होकर अपना अलग स्वतंत्र अस्तित्व रखते थे। अपनी मज़बूत आर्थिक स्थिति के आधार पर व्यापारी वर्ग कला एवं संस्कृति के उत्साही प्रश्रयदाता बन गए। उदाहरण के लिये, इटली के फ्लोरेंस शहर के स्ट्रेजो एवं मेडिसी नामक व्यापारिक परिवार यूरोप में कलाकारों एवं विद्वानों के सबसे प्रसिद्ध आश्रयदाता थे। फलत: ज्ञान को प्रोत्साहन देकर इन व्यापारिक वर्गों ने रूढ़िवादिता, कूपमंडूकता एवं संकीर्ण मानसिकता वाले अंधे समाज को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने में यथेष्ट योगदान दिया।

उपनिवेशों में प्रबोध-प्रसार *(Enlightenment spread to the colonies)*

17वीं-18वीं शताब्दी में फ्राँस व इंग्लैंड से प्रारंभ होने वाला यह चिंतन अमेरिका तथा एशिया जैसे उपनिवेशों में भी प्रसारित हुआ। अमेरिका में बेंजामिन फ्रैंकलिन, जैम्स ओटिस, टॉमस पेन, पेट्रिक हेनरी व सैमुअल एडम्स प्रमुख प्रबोधन के चिंतक रहे। जिन्होंने 'क्लब' व पुस्तकालय और पत्रिकाओं के माध्यम से प्रबोधन चेतना का प्रसार किया।

एशिया में प्रबोधन का प्रसार ईसाई मिशनरियों तथा साम्राज्यवादी देशों की शोषक नीतियों का परिणाम था। चीन में प्रबोधन के प्रभाव से स्वतंत्रता, प्रगतिशीलता, आक्रामकता के मूल्यों का प्रसार हुआ और कन्फ्यूशियसवाद की चुनौती दी गई। जापान में 'मेराकुशा' जैसी संस्थाएँ प्रबोधन की वाहक बनीं, जिन्होंने नैतिकता, आत्मनिर्भरता के मूल्यों को सर्वोच्चता प्रदान की। स्त्री शिक्षा व रोज़गार प्रदान करने पर ज़ोर दिया गया।

भारत में औपनिवेशिक लूट, नस्लीय भेदभाव, अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम, फ्राँसीसी क्रांति, इटली का एकीकरण, मार्क्स का चिंतन प्रबोधन के प्रेरक रहे। भारत के नवशिक्षित वर्ग ने प्रबोधन में वाहक की भूमिका निभाई। राजाराम मोहन राय, डेविड हेयर, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद के विचारों ने बुद्धिवादी चिंतन और सामाजिक समानता के मूल्यों को समाज में लोकप्रिय बनाया। टैगोर, शरतचंद्र, प्रेमचंद ने जनसामान्य की समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान देकर प्रबोधन के विचारों का अनुकरण किया।

परीक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण तथ्य

- पुनर्जागरण एक बौद्धिक आंदोलन था, जिसकी शुरुआत 14वीं शताब्दी में इटली से हुई तथा 16वीं शताब्दी तक इसका प्रसार विभिन्न यूरोपीय देशों, जैसे-जर्मनी, ब्रिटेन आदि में हुआ। इस पुनर्जागरण के दो आयाम थे- 'दुनिया व मानव की खोज'।
- पुनर्जागरण के लिये उत्तरदायी कारकों में निम्नलिखित कारक प्रमुख रहे- आर्थिक कारक, धर्मयुद्ध की भूमिका, कुस्तुनतुनिया का पतन, प्रेस का आविष्कार तथा मंगोल साम्राज्य का उत्कर्ष।
- पुनर्जागरण का प्रभाव महज प्राचीन रोम व यूनान की गौरवपूर्ण अतीत की खोज एवं विश्लेषण तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इसका दायरा नवीन परिप्रेक्ष्य में अत्यंत ही विस्तृत था, जिसने तत्कालीन धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य, विज्ञान व कला के क्षेत्र में वास्तविक चिंतन की गति को तीव्र कर दिया।
- पुनर्जागरण इटली में ही आरंभ क्यों हुआ? इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि इटली में पुनर्जागरण की शुरुआत एक स्वाभाविक घटना थी, क्योंकि इटली में प्राचीन उपलब्धियों की महीन व धुँधले रूप में ही सही, लेकिन एक शृंखला विद्यमान थी। वहीं नगरों के उदय तथा धनाढ्य वर्ग द्वारा कला एवं साहित्य को आश्रय देने की प्रवृत्ति भी इटली में बन रही थी। इसके अतिरिक्त इटली के नगरों का सामाजिक जीवन अपेक्षाकृत अन्य राष्ट्रों के समरसतापूर्ण व उदार विचारों से संपन्न था।
- पुनर्जागरण की प्रकृति से तात्पर्य उन मूल विशेषताओं से है, जिसके द्वारा इस नवजागरण का स्वरूप निर्धारित किया जा सके। यह आंदोलन अपनी मूल प्रकृति में ही तार्किक, बौद्धिक एवं मध्यवर्गीय चेतना से युक्त था, जिसने धर्मनिरपेक्षता, मानवतावादी मूल्यों, साहस व सौंदर्य के मूल्यों की स्थापना में अप्रतिम योगदान दिया।
- प्रबोधन 17-18वीं शताब्दी के मध्य यूरोप में होने वाली एक बौद्धिक क्रांति थी, जिसका आधार पुनर्जागरण, धर्मसुधार आंदोलन एवं वाणिज्यिक क्रांति ने तैयार किया था। इसने अमेरिकी क्रांति, फ्राँसीसी क्रांति एवं नेपोलियन के उदय को प्रभावित किया।

अभ्यास हेतु प्रश्न (मुख्य परीक्षा)

1. "पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?" इसके कारणों एवं प्रभावों पर प्रकाश डालें।
2. "पुनर्जागरण संसार और मानव की खोज थी।" टिप्पणी कीजिये।
3. "पुनर्जागरण राजनीतिक अथवा धार्मिक आंदोलन नहीं था, वह एक मनोदशा थी।" टिप्पणी कीजिये।
4. उसका (मार्टिन लूथर का) विद्रोह मूलतः राष्ट्रीय और लोकप्रिय था। समीक्षा कीजिये।
5. "रूसो के राजनीतिक दर्शन में समाजवाद, निरंकुशतावाद और प्रजातंत्र के बीज विद्यमान हैं।" टिप्पणी कीजिये।

अध्याय
2

अमेरिकी क्रांति एवं गृहयुद्ध
(American Revolution & Civil War)

1492 ई. में स्पेन निवासी कोलंबस द्वारा अमेरिका की खोज की गई। विकास की अपार संभावनाओं के कारण इस क्षेत्र विशेष में यूरोपीय देशों की दिलचस्पी बढ़ने लगी। 18वीं शताब्दी के मध्य तक उत्तरी अमेरिका के अटलांटिक तट के समीपवर्ती क्षेत्रों में ब्रिटेन के अधीन 13 उपनिवेश अस्तित्व में आ चुके थे। ये विविध उपनिवेश एक मिश्रित संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे जिसमें ब्रिटेन, फ्राँस, जर्मनी, हॉलैंड, पुर्तगाल आदि देशों के भूमिहीन किसान, धार्मिक स्वतंत्रता के आकांक्षी, व्यापारी एवं बिचौलिये आदि जाकर बस गए थे। भौगोलिक दृष्टि से अमेरिका का उत्तरी भाग मत्स्य पालन हेतु, मध्यवर्ती भाग शराब तथा चीनी उद्योग हेतु एवं दक्षिणी भाग कृषि कार्य के लिये समृद्ध क्षेत्र था। यहाँ अंग्रेज़ ज़मींदारों के अधीन बड़े-बड़े कृषि फार्म थे, जिनमें अफ्रीकी गुलामों की सहायता से खेती (विशेषकर तंबाकू एवं कपास की खेती) की जाती थी।

EUROPEAN SETTLEMENTS IN NORTH AMERICA ABOUT 1700

अमेरिका स्थित कुल 13 ब्रिटिश उपनिवेशों के प्रत्येक उपनिवेश में शासन का संचालन गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी समिति के अधीन विधानसभा द्वारा होता था। गवर्नर ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। गवर्नर की नियुक्ति ब्रिटिश सत्ता द्वारा होती थी एवं उसकी कार्यकारिणी समिति में ब्रिटिश ताज़ द्वारा मनोनीत सदस्य होते थे, जबकि विधानसभा का गठन विशिष्ट मतदाताओं द्वारा निर्वाचन के फलस्वरूप होता था, जो मुख्य रूप से स्थानीय विषयों से संबंधित कानून के निर्माण के साथ-साथ कर (Tax) भी लगाती थी। अंततः इस शासन व्यवस्था में अंतिम और निर्णायक नियंत्रण ब्रिटिश सत्ता का ही होता था तथा ब्रिटिश हितों को ही प्राथमिकता दी जाती थी।

18वीं शताब्दी में इन उपनिवेशों के संबंध में कुछ आपत्तिजनक कानूनों व अन्य परिस्थितियों ने उपनिवेश की जनता में असंतोष एवं घृणा को बढ़ावा दिया तथा जनता इस शोषणकारी औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध उठ खड़ी हुई और अंततः उपनिवेशवासियों का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित हुआ।

2.1 अमेरिकी क्रांति के कारण *(Causes of American Revolution)*

1. इंग्लैंड के प्रति सहानुभूति का अभाव: अमेरिकावासियों को इंग्लैंड के प्रति कोई विशेष लगाव या सहानुभूति नहीं थी, क्योंकि यहाँ पर बसाई गई अधिकांश जनता या तो धार्मिक उत्पीड़न से बचकर यहाँ आई थी या फिर वह सज़ायाफ्ता मुजरिम थी। इसके अतिरिक्त यहाँ की आबादी में 10% के लगभग अन्य यूरोपीय देशों की जनसंख्या भी थी, जिसकी स्वामिभक्ति इंग्लैंड के प्रति होने का प्रश्न ही नहीं था। इंग्लैंड और अमेरिका के मध्य भौगोलिक दूरी भी इतनी अधिक थी कि कोई नित्य संपर्क होने की संभावनाएँ नहीं थीं। इस भौगोलिक और सामाजिक पृथक्कीकरण ने स्वातंत्र्य चेतना को जाग्रत् किया।

अध्याय
3

फ्राँसीसी क्रांति
(The French Revolution)

सन् 1789 की फ्राँसीसी क्रांति फ्राँस की निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध एक क्रांति थी, जिसके मूल में असमानता और भेदभाव पर आधारित सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था विद्यमान थी। इस क्रांति ने संपूर्ण विश्व में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व पर आधारित मापदंडों को प्रसारित किया।

3.1 फ्राँसीसी क्रांति के कारण *(Causes of the French Revolution)*

राजनीतिक पतन: इंग्लैंड जैसे देश को छोड़कर संपूर्ण यूरोप में दैवी सिद्धांतों पर आधारित निरंकुश एवं स्वेच्छापूर्ण शासन का प्रचलन था। फ्राँस के संबंध में यह व्यवस्था मुखर थी। फ्राँसीसी शासक लुई चौदहवाँ अपने आपको 'मैं ही राज्य हूँ' कहा करता था। राजनीतिक एवं प्रशासनिक पदों पर वंशानुगत आधार पर ही नियुक्ति होती थी जिस पर सामंत एवं पादरी वर्ग का एकाधिकार था। लुई सोलहवें (अकर्मण्य और अयोग्य) के समय फ्राँस की राजनीतिक व्यवस्था अराजकता व भ्रष्टाचार जैसे तत्त्वों से आच्छादितथी।

सामाजिक संरचना: अगर हम फ्राँस की तत्कालीन दशा की तुलना यूरोप के अन्य देशों से करें तो निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि फ्राँस की दशा अन्य यूरोपीय देशों से अधिक खराब नहीं थी, लेकिन साधारण जनता को बहुत कष्ट सहने पड़ रहे थे। आमतौर पर फ्राँसीसी समाज विशेषाधिकार प्राप्त एवं विशेषाधिकारहीन वर्गों में विभाजित था। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के अंतर्गत पादरी एवं आभिजात्य अथवा कुलीन वर्ग आते थे, जबकि विशेषाधिकारविहीन वर्गों में किसान, मज़दूर एवं मध्यवर्ग जैसे व्यापारी, लेखक, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर आदि शामिल थे। सारांशत: फ्राँसीसी समाज तीन वर्गों- पादरी वर्ग, कुलीन वर्ग एवं किसान-मज़दूर-मध्यम वर्ग (व्यापारी तथा प्रबुद्ध वर्ग) में बँटा था। अब अगर हम इस विषय पर विचार करें कि फ्राँसीसी समाज के अंतर्गत इन तीनों वर्गों की वास्तविक स्थिति कैसी थी तो हम पाएंगे कि समाज में प्रथम दो वर्ग- पादरी एवं कुलीन वर्ग- तुलनात्मक रूप से कम जनसंख्या वाले थे, परंतु उच्च प्रशासनिक पदों एवं सैन्य पदों पर अधिकांशत: इन्हीं की नियुक्ति होती थी। साथ ही ये दोनों वर्ग करों की ज़िम्मेदारियों से मुक्त थे। इसके अलावा फ्राँस की कुल भूमि के लगभग 40% पर इन्हीं दो वर्गों का अधिकार था। इस तरह कहा जा सकता है कि फ्राँसीसी समाज में इन दोनों वर्गों की विशिष्ट स्थिति थी। परंतु एक विशेष बात यह भी थी कि इन दोनों वर्गों में कुछ लोग ऐसे थे जिनका स्तर तीसरे वर्ग से कहीं बेहतर नहीं कहा जा सकता था। ये लोग अपने ही वर्ग के उच्च स्तर वाले लोगों से प्रतिद्वंद्विता करते थे एवं तत्कालीन व्यवस्था से असंतुष्ट थे। ये अपने वर्गों के समृद्ध लोगों को ही अपने दु:खों का कारण मानते थे। स्वाभाविक रूप से इनकी नीति तीसरे वर्गों के समर्थन की थी। तीसरा वर्ग फ्राँसीसी जनसंख्या के अधिकतम भाग का प्रतिनिधित्व करता था। शोषण, अत्याचार, करों का एकतरफा भार आदि जैसे भेदभावमूलक तत्त्व थे जिससे प्रथम दो वर्गों के प्रति व्यापक असंतोष को बढ़ावा मिलता था। किसान-मज़दूर की दीन-हीन स्थिति एवं मध्यमवर्ग की जागरूकता ने फ्राँस के तत्कालीन संकट को बढ़ावा दिया। मध्यम वर्ग यद्यपि आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो गया था परंतु विभिन्न प्रतिष्ठित प्रशासनिक पदों तथा अन्य सुविधाओं से वंचित था। योग्यता एवं धन के बावजूद तत्कालीन व्यवस्था में उसे प्रतिष्ठा नहीं मिल पा रही थी। स्वाभाविक रूप से फ्राँस की क्रांति ने सभी शक्तियों को एकजुट कर व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। इसी सामाजिक भेदभावमूलक स्थिति के आधार पर यह कहा जाता है कि फ्राँस की क्रांति असमानता के विरुद्ध एक संघर्ष था, जो समानता के आदर्श को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया था।

आर्थिक दुर्दशा: फ्राँसीसी क्रांति के पीछे फ्राँस का आर्थिक खोखलापन भी कम उत्तरदायी नहीं था। ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध, सप्तवर्षीय युद्ध एवं अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी से फ्राँस की आर्थिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। विदेशी ऋणों में व्यापक वृद्धि हुई। तत्कालीन फ्राँसीसी शासक लुई सोलहवें द्वारा राज्य की वित्तीय साख मज़बूत करने के उद्देश्य से वित्त मंत्रियों के रूप में वित्त विशेषज्ञों की नियुक्ति की गई तथा यह बात स्पष्ट रूप से सामने आई

अध्याय
4

औद्योगिक क्रांति
(Industrial Revolution)

4.1 इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति *(Industrial Revolution in England)*

औद्योगिक क्रांति से आशय उन वैज्ञानिक आविष्कारों, तकनीकी अनुसंधानों एवं उनके अनुप्रयोगों से है, जिसके फलस्वरूप 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड में परंपरागत उद्योगों के स्थान पर नए एवं विशाल उद्योगों की स्थापना की गई, जिससे उत्पादन की तीव्र गति एवं बेहतर उत्पादन के फलस्वरूप तत्कालीन औद्योगिक परिवेश में क्रांतिकारी परिवर्तन आए। 18वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल तक इंग्लैंड में लघु एवं कुटीर उद्योग-धंधों की ही प्रमुखता थी, परंतु नए-नए यांत्रिक अनुसंधानों के फलस्वरूप संगठित एवं विशाल कारखाना पद्धति का विकास हुआ, जिसमें मशीनों द्वारा व्यापक पैमाने पर उत्पादन संभव हो सका। इस बदले परिवेश से पूंजीवादी विचारधारा सामने आई तथा देश के संपूर्ण औद्योगिक जगत पर पूंजीपतियों का निर्णायक नियंत्रण स्थापित हो गया। इस तरह कुटीर उद्योगों के स्थान पर कारखाना प्रणाली तथा दस्तकारी के स्थान पर मशीन युग की शुरुआत ही औद्योगिक क्रांति है। इस क्रांति ने वृहद् पैमाने पर पूंजीवाद के विकास को प्रोत्साहन, औद्योगिक श्रमिक-वर्ग के स्तर में बदलाव, जनसंख्या में वृद्धि तथा इसका स्थानांतरण एवं नव साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया तथा साथ ही नई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को भी जन्म दिया।

सर्वप्रथम इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति शुरू होने के कारण
(Reasons for the foremost beginning of industrial revolution in England)

18वीं शताब्दी में फ्राँसीसी उद्योग-धंधे एवं व्यापार इंग्लैंड की अपेक्षा उन्नत अवस्था में थे। जनसंख्या के मामले में फ्राँस की जनसंख्या इंग्लैंड से लगभग तिगुनी थी। खनिज संसाधन, मशीनी शक्ति एवं कच्चा माल भी फ्राँस में अपेक्षाकृत अधिक था, फिर भी औद्योगिक क्रांति इंग्लैंड में ही क्यों हुई? इसके लिये अनेक कारण उत्तरदायी थे, जो इस प्रकार हैं–

1. **इंग्लैंड की भौगोलिक स्थिति:** इंग्लैंड की अनुकूल भौगोलिक स्थिति ने औद्योगिक क्रांति के लिये एक मज़बूत आधार प्रदान किया। चारों ओर से समुद्र से घिरे होने के कारण इंग्लैंड के चारों ओर अनेक बंदरगाहों का विकास हुआ। व्यापारिक आवागमन में सुविधा तथा परिवहन की सस्ती एवं अच्छी सुविधाओं, जैसे निर्णायक कारकों से आंतरिक एवं बाह्य व्यापार को प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त कपड़ों के उत्पादन के लिये उपयुक्त जलवायु, शक्ति साधन के रूप में कोयला, धातु के रूप में लोहा तथा आवागमन हेतु नदियों की उपस्थिति ने औद्योगिक क्रांति हेतु प्रेरक तत्त्व का काम किया।
2. **कोयला तथा लोहे के उत्पादन में वृद्धि:** इंग्लैंड में कोयला एवं लोहे के प्रचुर भंडार के बावजूद उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं था, जब तक उसके उत्पादन में वृद्धि न हो, जिससे ईंधन के रूप में तथा मशीन निर्माण में इसका यथेष्ट उपयोग हो सके। हालाँकि इंग्लैंड में 1700 ई. तक कोयला उत्पादन के प्रारंभिक प्रयास आरंभ हो चुके थे, किंतु एक बड़ी समस्या यह थी कि अधिक गहराई में कोयला खुदाई के क्रम में पानी निकल जाता था। अत: किसी ऐसी युक्ति की आवश्यकता महसूस हो रही थी, जिससे इन पानी को खदानों से निकाला जा सके और कोयले का उत्पादन बढ़ाया जा सके। इस संबंध में जेम्स वाट एवं मैथ्यू बोल्टन के प्रयास से वाष्प इंजन का विकास हुआ और इंग्लैंड में कोयला उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

   यद्यपि इंग्लैंड में लोहे की कमी नहीं थी, परंतु उसके उपयोग हेतु उसे गलाने की ज़रूरत पड़ती थी। तत्कालीन पद्धति के अनुसार लकड़ी की सहायता से लोहे को गलाकर उपयोग किया जाता था। यह प्रणाली काफी धीमी एवं खर्चीली भी थी। हालाँकि डार्बी द्वारा विकसित लोहे को गलाने की कोयला पद्धति ने काफी हद तक इस समस्या का समाधान कर दिया, परंतु इस तरीके से गलाए गए लोहे में शुद्धता का अभाव था। अंतत: हेनरी कोर्ट द्वारा कोक कोयले का उपयोग कर कच्चे लोहे की अशुद्धियाँ दूर करने एवं शुद्ध लोहे के उत्पादन में सफलता प्राप्त की गई। इस पद्धति से इंग्लैंड में लौह उद्योग की पर्याप्त प्रगति संभव हो पाई।

अध्याय
5

इटली का एकीकरण (Unification of Italy)

19वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों के मध्य इटली महज एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' के रूप में था। इस समय इटली एक विखंडित क्षेत्र था, जो लगभग एक दर्जन स्वतंत्र राज्यों में बँटा हुआ था। इनमें से विभिन्न राज्यों के शासकों के हित परस्पर टकराते रहते थे। ये सभी शासक इटली की राजनीतिक एकता के प्रबल विरोधी थे, क्योंकि इटली की एकता के फलस्वरूप उन्हें अपनी गद्दी से हाथ धोने की आशंका थी। ऑस्ट्रिया का दबदबा भी इटली की राजनीति में था।

लेकिन इटली के इन विभिन्न राज्यों के शासकों के न चाहते हुए भी 19वीं शताब्दी में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं, जिसके फलस्वरूप इटली में राष्ट्रवाद का उदय संभव हो सका। इस दौरान बहुत सी क्रांतिकारी संस्थाओं का जन्म हुआ, जिसने इटली के एकीकरण में बढ़-चढ़कर भाग लिया और अंततोगत्वा 1870 ई. में एक राष्ट्र के रूप में इटली का उदय हुआ। इटली के एकीकरण की प्रक्रियाओं को ठीक ढंग से समझने के लिये पहले हम यह देखते हैं कि इटली के एकीकरण के मार्ग में कौन-कौन सी प्रमुख बाधाएँ थीं।

5.1 इटली के एकीकरण में बाधाएँ *(Obstacles in Unification of Italy)*

आंतरिक बाधाएँ

1. प्रथम तो यह कि देश की बहुसंख्यक जनसंख्या अशिक्षित एवं गरीब थी, जिन्हें राष्ट्रीय एकता जैसे विषयों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। यद्यपि इटली के प्रबुद्ध एवं व्यापारी वर्ग अपने हितों के संरक्षण तथा अधिक लाभ पाने की आशा से राष्ट्रीय एकता को आवश्यक मानते थे, परंतु यह बात विशेष महत्त्व रखती है कि बिना आम जनता की जागरूकता एवं भागीदारी के राष्ट्रीय एकता व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं थी।
2. तत्कालीन इटली में अनेक छोटे-छोटे राजा राज्य कर रहे थे और उन्हें डर था कि राष्ट्रीय एकता के लिये चलाए गए आंदोलन उनके निरंकुश राजतंत्र तथा राजगद्दी के लिये खतरा साबित हो सकते हैं, क्योंकि एकीकृत इटली में एक ही राजा हो सकता था।
3. आंतरिक बाधाओं के अंतर्गत राजतंत्र का विरोध तो था ही, साथ में वहाँ के कुलीन वर्ग का भी विरोध था, क्योंकि वे वहाँ पर स्वयं को चर्च, धर्मसंघ तथा शक्ति का रक्षक मानते थे और ऑस्ट्रिया इन सभी का संरक्षक था।
4. आर्थिक दृष्टिकोण से इटली में क्षेत्रीय आधार पर आर्थिक विषमता व्याप्त थी; एक तरफ उत्तरी इटली अर्द्ध-औद्योगिक क्षेत्र था तो दूसरी ओर दक्षिणी इटली अत्यंत ही पिछड़ा एवं ग्रामीण क्षेत्र था।
5. एकीकरण के मार्ग में सामंत वर्ग एवं कुलीन वर्ग ही प्रमुख बाधक तत्त्व थे, जो सामंतवादी एवं जागीरदारी प्रथा को और भी मज़बूत कर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते थे। चूँकि इटली में औद्योगिक पिछड़ापन अधिक था। अत: ऐसी स्थिति में ज़मीन के मालिकों का समाज में काफी वर्चस्व था। ये वर्ग अपने वर्गीय हितों की रक्षा हेतु राष्ट्रीय एकता को एक गंभीर समस्या मानते थे।
6. इतनी गंभीर कठिनाइयों के बावजूद इटली में प्रांतीयता, संवैधानिकता एवं उदारवाद की भावनाएँ भी प्रबल थीं। एकीकरण के संबंध में मुख्यत: तीन विचारधाराओं का उदय हुआ– (a) 'मेजिनी का गणतंत्रवादी सिद्धांत' अर्थात् मेजिनी इटली का एकीकरण एक गणराज्य के रूप में चाहता था। गैरीबाल्डी भी इस मत का समर्थक था। (b) 'जोजाबर्टी का संघीय राज्य का सिद्धांत' अर्थात् जोजाबर्टी पोप के अधीन इटली के प्रत्येक राज्यों के संघ का समर्थन करता था। (c) कावूर सार्डीनिया नामक राज्य के अधीन इटली का एकीकरण चाहता था। वह मूलत: संवैधानिक तथा सीमित राजतंत्र के सिद्धांतों का समर्थक था। अत: कहा जा सकता है कि इन सभी का लक्ष्य तो इटली का एकीकरण ही था, परंतु उनकी पद्धति एवं उनके विचारों में अंतर था।

अध्याय 6

जर्मनी का एकीकरण और बिस्मार्क (Unification of Germany and Bismarck)

19वीं शताब्दी के आरंभ में जर्मनी भी इटली की भाँति एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' मात्र था। भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से जर्मनी के राज्यों को तीन भागों में बाँटकर देखा जा सकता है– इसके उत्तरी भाग में प्रशा, सैक्सनी, हनोवर, फ्रैंकफर्ट आदि थे, मध्यवर्ती भाग में राइनलैंड का प्रसिद्ध क्षेत्र एवं दक्षिणी भाग में मुख्यतः बुटेम्बर्ग, बवेरिया, प्लैटिनेट आदि थे। इन सभी राज्यों में प्रशा की स्थिति विशिष्ट थी जो आकार एवं सैन्य दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली था।

जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधक तत्त्व *(Major obstructive factors in the unification of Germany)*

जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधक तत्त्व ऑस्ट्रिया द्वारा जर्मनी के आंतरिक मामलों में अत्यधिक व अनुचित हस्तक्षेप करना था। ऑस्ट्रिया जर्मनी के विविध भागों में उदित राष्ट्रवादी भावनाओं के विरुद्ध था। वह चाहता था कि जर्मनी में राष्ट्रीयता स्थापित न हो और उसका स्वार्थ भी जर्मनी के बिखराव में ही था। इसके अतिरिक्त जर्मनी के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक किसी भी परिस्थिति में अपनी यथास्थिति को बनाए रखना चाहते थे, क्योंकि एकीकृत जर्मनी अथवा जर्मनी में विकसित हो रही राष्ट्रवादी विचारधाराओं द्वारा उनकी वर्तमान स्थिति पर गंभीर संकट उत्पन्न होने की आशंका थी। इसी कारण वहाँ के तत्कालीन छोटे-छोटे शासक एकीकृत जर्मनी में किसी भी तरह की दिलचस्पी नहीं ले रहे थे। इस प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि प्रारंभ में तो ये सभी बाहरी राष्ट्र जर्मनी के एकीकरण के मुद्दे पर गंभीर नहीं थे, परंतु बिस्मार्क की सफल कूटनीति ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिस्मार्क ने जर्मनी की एकता को युद्ध का प्रश्न बना कर जर्मनी के एकीकरण का महान कार्य सफल किया।

जर्मनी के एकीकरण में सहायक तत्त्व *(Assisting factors in the unification of Germany)*

फ्राँसीसी क्रांति एवं नेपोलियन का प्रभाव (French revolution and Napoleon's influence)

फ्राँसीसी क्रांति एवं नेपोलियन के प्रभाव ने जर्मनी के एकीकरण के लिये एक मज़बूत आधारशिला तैयार की। 1805 में नेपोलियन बोनापार्ट ने ऑस्टरलिट्ज़ के युद्ध (Battle of Austerlitz) में ऑस्ट्रिया को भीषण शिकस्त दी और उसके पश्चात् हुई प्रेसबर्ग की संधि के अनुसार जर्मनी में पवित्र रोमन सम्राट का प्रभुत्व समाप्त हो गया। इस रूप में ऑस्ट्रियाई वर्चस्व में कमी आई और वहाँ नेपोलियन के हस्तक्षेप में व्यापक वृद्धि हुई। नेपोलियन द्वारा जर्मनी में किये गए प्रशासनिक सुधारों के तहत संपूर्ण जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर कुल 39 राज्यों की स्थापना कर उसका एक संघ बनाया गया। यह संघ इतिहास में 'राइन संघ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस बदली हुई स्थिति में संपूर्ण जर्मनी में फ्राँसीसी कानून लागू किया गया। यह पहला अवसर था, जब संपूर्ण जर्मनी में कानून के आधार पर एकता स्थापित की गई थी। यह कानून उदारवादी विचारों पर आधारित था, इसलिये इस कानून के प्रति विशेष विरोध नहीं हुआ, परंतु नेपोलियन द्वारा जर्मनी पर हुए आक्रमण के फलस्वरूप राइनलैंड का पश्चिमी भाग फ्राँस के अधीन हो गया जिससे जर्मनी में फ्राँस के विरुद्ध प्रतिक्रिया खुलकर सामने आई, क्योंकि जर्मन सदैव राइन नदी को अपनी पवित्र भूमि की स्वाभाविक प्राकृतिक सीमा मानते रहे हैं और यही वह कारण है, जिससे जर्मनवासियों में राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवादी विचारधारा बलवती होने लगी। यद्यपि, नेपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था से जर्मन उद्योग-व्यवसाय को तीव्र आघात पहुँचा और जर्मनी की अर्थव्यवस्था गंभीर रूप से प्रभावित हुई, लेकिन नेपोलियन के कुछ प्रयास, जैसे- आर्थिक दृष्टिकोण से जर्मनी में गिल्ड प्रणाली को समाप्त कर मुक्त वाणिज्य नीति का प्रचार एवं प्रसार, विभाजित जर्मनी के 39 राज्यों को एक संघ में स्थापित करने के फलस्वरूप जर्मनवासियों में एकता का एहसास करवाना और उनमें एकीकृत जर्मनी का स्वप्न पालना महत्त्वपूर्ण साबित हुआ।

औद्योगिक विकास (Industrial development)

(क) जोलवेरिन की स्थापना (Establishment of Zollverein): प्रशा जैसे जर्मन राज्य के नेतृत्व में जोलवेरिन अर्थात् चुंगी संघ की स्थापना ने जर्मनी के आर्थिक एकीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस व्यवस्था के तहत सदस्य

अध्याय
7

प्रथम विश्वयुद्ध (First World War)

प्रथम विश्वयुद्ध विश्व इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह एक ऐसी घटना थी जब एक यूरोपीय युद्ध विश्वयुद्ध में परिवर्तित हो गया। इस युद्ध की पृष्ठभूमि में अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति, साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता, शस्त्रों की होड़, उग्र राष्ट्रवाद, ऑस्ट्रिया के राजकुमार फर्डीनेंड की सेराजेवो में हत्या आदि तत्त्व थे। इस युद्ध में जितनी अधिक जन-धन की बर्बादी हुई उतनी मानव इतिहास में इससे पूर्व नहीं हुई थी। इससे पूर्व की लड़ाइयों में गैर-सैनिक जनता साधारणतया शामिल नहीं होती थी तथा जान की हानि आमतौर पर युद्धरत सेनाओं को उठानी पड़ती थी। 1914 के इस विश्वयुद्ध का क्षेत्र सर्वव्यापी था एवं इस युद्ध में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर विश्व के लगभग सभी देश सम्मिलित हुए। इस युद्ध में यूरोप, एशिया, अफ्रीका तथा प्रशांत क्षेत्र में लड़ाइयाँ लड़ी गई थीं। इसके अभूतपूर्व विस्तार एवं सर्वांगीण प्रकृति के कारण ही इसे 'प्रथम विश्वयुद्ध' कहा गया। यह विश्वयुद्ध 28 जुलाई, 1914 से 11 नवंबर, 1918 तक चला था।

7.1 प्रथम विश्वयुद्ध के कारण *(Causes of First World War)*

(i) यूरोपीय कूटनीतिक व्यवस्था: 1871 ई. में जर्मनी के एकीकरण के पश्चात् बिस्मार्क द्वारा यह घोषणा की गई थी कि जर्मनी एक संतुष्ट राष्ट्र है एवं वह क्षेत्रीय विस्तार के संबंध में कोई इच्छा नहीं रखता है। इसके बावजूद उसने फ्राँस से अल्सास-लॉरेन का क्षेत्र लेकर उसे आहत कर दिया और यह वही बिंदु है जिस पर जर्मनी को हमेशा यह भय बना रहता था कि फ्राँस यूरोप में दूसरे देशों के साथ मित्रता स्थापित कर जर्मनी के खिलाफ बदले की कार्रवाई न कर दे। इसी कारण, बिस्मार्क अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फ्राँस को अलग-थलग अथवा एकाकी रखने के लिये कूटनीतिक जाल बुनने लगा। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने 1879 ई. में ऑस्ट्रिया के साथ द्वैध संधि की जो एक गुप्त संधि थी। 1882 में इटली ने द्वैध संधि में शामिल होकर इसे त्रिवर्गीय संधि का रूप प्रदान किया। बिस्मार्क की यह कोशिश भी रही कि रूस के साथ सम्यक् संबंध कायम हो, इसलिये 1871, 1881 तथा 1887 में उसने रूस के साथ संधि कर उसे अपने पक्ष में मिलाए रखा। इस प्रकार बिस्मार्क की यह हर संभव कोशिश रही कि फ्राँस को मित्रहीन बनाए रखा जाए और वह इसमें सफल भी रहा। परंतु 1890 में बिस्मार्क के चांसलर पद से हटने के बाद जर्मन सम्राट विलियम कैसर उसकी इस विरासत को सँभाल पाने में सफल नहीं रहे। 1894 में फ्राँस ने अंततः रूस से मित्रता कर ली। 1907 में इंग्लैंड, फ्राँस तथा रूस ने आपस में समझौता कर इसे 'त्रिवर्गीय मैत्री संघ' का रूप दिया। इस प्रकार यूरोपीय देशों में ज़बरदस्त गुटबाज़ी का दौर चल पड़ा। सभी साम्राज्यवादी देशों ने अपने-अपने हितों को साधने के लिये गुटबाज़ी को प्रश्रय दिया एवं आपस में गुप्त संधियाँ कीं। इन विभिन्न यूरोपीय देशों के इन कृत्यों से यूरोप में शंका का वातावरण व्याप्त हो गया। इस प्रकार इन दोनों गुटों में प्रतिद्वंद्विता एवं तनाव बढ़ता गया तथा प्रथम विश्वयुद्ध में दोनों गुट एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ने में संलग्न हो गए।

(ii) साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता: यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता प्रथम विश्वयुद्ध का एक दूसरा मौलिक कारण स्वीकार किया जाता है। 1870 के दशक में नवीन साम्राज्यवाद का युग प्रारंभ हुआ। जर्मनी एवं इटली के एकीकरण के पूर्व ही विभिन्न यूरोपीय देशों द्वारा विभिन्न एशियाई तथा अफ्रीकी क्षेत्रों में साम्राज्य स्थापित किया जा चुका था। एकीकरण के पश्चात् जर्मनी एवं इटली जैसे देश एक महान शक्ति के रूप में उभरे एवं इन्हें उपनिवेशों की आवश्यकता पड़ी। वस्तुतः जब तक बिस्मार्क जर्मनी का चांसलर रहा तब तक तो उसने साम्राज्यवादी विस्तार से स्वयं को अलग रखा, परंतु उसके पश्चात् जर्मन सम्राट विलियम कैसर द्वारा यह प्रसिद्ध घोषणा की गई कि "जर्मनी को भी सूर्य के नीचे जगह चाहिये।" अर्थात् इसका अभिप्राय था– उपनिवेशों की प्राप्ति तथा इसकी प्राप्ति हेतु साम्राज्यवादी नीति को अपनाना।

पहले से स्थापित साम्राज्यवादी देशों के गुट में तीन नए देशों- जर्मनी, इटली एवं जापान के शामिल हो जाने से स्वाभाविक रूप से साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता में तीव्रता आई। इससे साम्राज्यवादी शक्तियों के मध्य अफ्रीका का बँटवारा,

अध्याय
8

1917 की रूसी क्रांति
(Russian Revolution of 1917)

1917 ई. की रूसी क्रांति मुख्य रूप से रूस की पिछड़ी अर्थव्यवस्था, किसानों एवं मज़दूरों की विपन्नता, निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन के अत्याचार, जन-विद्रोह, सरकार में मज़दूरों की दशा में सुधार लाने की इच्छाशक्ति का अभाव आदि का सम्मिलित परिणाम था। 1917 ई. की रूसी क्रांति प्रथम विश्वयुद्ध के काल में ऐसी परिस्थितियों में हुई जब रूस की सेनाओं की सर्वत्र हार हो रही थी परंतु यह क्रांति युद्ध में रूस की सैनिक पराजय का परिणाम नहीं था। युद्ध ने रूस में उन प्रक्रियाओं को तीव्र कर दिया जो लंबे अर्से से रूस की जारशाही व्यवस्था की जड़ों को खोखला कर रही थीं।

8.1 रूसी क्रांति के कारण *(Causes of Russian Revolution)*

(i) रूस में निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी जारशाही तंत्र: रूस के शासक को 'जार' कहा जाता था, जो एक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक के रूप में बदनाम था। ऐसी स्थिति में जब 19वीं शताब्दी में लगभग संपूर्ण यूरोप में परंपरागत शासन के स्वरूप में व्यापक राजनीतिक परिवर्तन हो रहे थे, रूसी शासक दैवी शक्ति के सिद्धांत के आधार पर रूढ़िवादी शासन को प्रश्रय दिये हुए थे। रूस का जार निकोलस द्वितीय, जिसके समय में क्रांति हुई थी, अत्यंत ही भोग-विलासी शासक था तथा प्रजा के मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं लेता था। कृषक दासता से मुक्ति एवं रूस के औद्योगीकरण के कारण मज़दूरों की संख्या में वृद्धि हुई। परंतु, इनमें से न तो कृषकों को और न ही मज़दूरों को राजनीतिक अधिकार मिल सका। हालाँकि 1861 ई. के पश्चात् कुछ स्वायत्तशासी परिषदें शहरों एवं गाँवों में अस्तित्व में आईं, परंतु इनका संगठन संतोषजनक नहीं था। इन परिषदों में भूमिपतियों एवं धनी लोगों का ही बोलबाला था। रूसी शासक जार द्वारा प्रगतिशील प्रवृत्तियों के विरुद्ध घोर दमन की नीति अपनाई गई, जैसे प्रेस की स्वतंत्रता नहीं थी तथा नागरिकों को किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं मिले हुए थे। बौद्धिक विचारों पर भी कठोर नियंत्रण था। इसके अलावा जार निकोलस द्वितीय की पत्नी जरीना एवं मंत्री रासपुतिन भी निरंकुश शासन के घोर पक्षधर थे। ये दोनों रूस के राजनीतिक एवं प्रशासनिक तंत्र पर विशेष नियंत्रण रखते थे। इन परिस्थितियों में जब 19वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे एवं राजतंत्र की शक्ति सीमित कर संवैधानिक राजतंत्र या गणतंत्र की स्थापना हो रही थी, रूसी जनता जारशाही व्यवस्था के विरुद्ध संगठित होने लगी।

(ii) रूस-जापान युद्ध (1904–05 ई.): 1904–05 ई. के रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय ने रूसी राजनीतिक व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर कर दिया। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् उपनिवेशों की तलाश में जापान ने चीन के मंचूरिया क्षेत्र पर रूस के अधिकारों को चुनौती दी और इसी मुद्दे पर रूस एवं जापान के मध्य युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में रूस की पराजय ने रूसी महानता को मिथ्या साबित कर दिया। एक छोटे से एशियाई देश जापान के हाथों एक विशाल देश रूस की पराजय के लिये रूसी जनता अब खुलकर जारशाही को दोषी ठहराने लगी। इस पराजय ने रूसी जनता को उदारवादी क्रांति हेतु प्रेरित किया। रूसी जनता द्वारा प्रतिनिधि सभा की मांग तीव्र हो गई। फलतः इस प्रतिकूल स्थिति में दबाव में आकर जार द्वारा जनता की इस मांग को स्वीकार कर लिया गया एवं **ड्यूमा** नाम से प्रसिद्ध संसद की स्थापना हुई। परंतु जार द्वारा अपनी सत्ता के क्रमिक क्षरण के भय से संसद को बार-बार भंग किया जा रहा था। फलतः जार एवं संसद के मध्य तनाव उत्पन्न हुए। 1904–05 ई. की रूसी पराजय एवं संसद का संघर्षपूर्ण रवैया और जार का आम जनता की आकांक्षाओं के प्रति उपेक्षापूर्ण रुख निश्चित रूप से 1917 ई. की रूसी क्रांति के कारण बने।

(iii) राजनीतिक जागरूकता तथा राजनीतिक दलों का उदय: हालाँकि यह सत्य है कि रूस में औद्योगीकरण अन्य यूरोपीय देशों की तरह नहीं हुआ और न ही वहाँ मज़दूरों की संख्या ही अधिक थी, परंतु रूस में मार्क्स के अनुयायियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। इसका मुख्य कारण यह था कि मार्क्सवादी समूह मज़दूरों के मध्य रहकर सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना बढ़ा रहे थे। जारशाही सरकार ने मार्क्सवादियों पर अनेक प्रतिबंध लगा रखे थे, लेकिन फिर भी उनके अखबार तथा पर्चे निकलते रहे एवं छोटी-छोटी समितियों के माध्यम से उनका राष्ट्रव्यापी संगठन बनता

अध्याय
9

1929 की वैश्विक आर्थिक मंदी (Global Economic Crisis – 1929)

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् 1929 की आर्थिक मंदी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका में अधिकांश देशों का भीषण आर्थिक-सामाजिक विनाश हुआ था। युद्ध के पश्चात् अमेरिका की स्थिति सबसे सुदृढ़ थी और वह यूरोपीय राष्ट्रों के पुनर्निर्माण में लगा था जिससे उसके विदेश व्यापार में वृद्धि हुई। विनष्ट राष्ट्रों की प्रगति ने भी विश्व अर्थव्यवस्था में सकारात्मक उभार के संकेत प्रदान की। जर्मनी जैसे राष्ट्रों के समक्ष यद्यपि भारी क्षतिपूर्ति चुकाना एक समस्या थी फिर भी उसके औद्योगिक उत्पादन में सुधार होने लगा था। रूस भी बोल्शेविक क्रांति के पश्चात् अपने साम्यवादी कार्यक्रमों और 'नेप' के द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था को रफ्तार दे चुका था और 1928 में पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ किया था। विश्व के अधिकांश राष्ट्र युद्धजनित आर्थिक क्षति की भरपाई करने के लिये दोगुने जोश व उत्साह से लगे हुए थे और पर्याप्त सकारात्मक परिणाम भी दिख रहे थे; किंतु यह सफलता क्षणिक एवं बुलबुले की भाँति थी। अक्टूबर 1929 में एकाएक अमेरिकी अर्थव्यवस्था ढह गई और उसका यह संकट पूरे विश्व में फैल गया जिसे 1929 की वैश्विक आर्थिक मंदी कहा जाता है।

आर्थिक मंदी के कारण *(Causes of economic crisis)*

आर्थिक मंदी को निम्नलिखित कारणों का संयुक्त परिणाम माना जा सकता है–

1. **व्यापार चक्र का उतार-चढ़ाव:** 1929 की महामंदी व्यापार चक्रों का परिणाम थी क्योंकि आर्थिक क्रियाओं में एक निश्चित समयावधि में उतार-चढ़ाव आता रहा है। 1920–24 में भी इंग्लैंड में साधारण व्यापार चक्र ने गंभीर आर्थिक संकट उत्पन्न कर दिया था।
2. **सोने का विषम विभाजन:** विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व का अधिकांश सोना अमेरिका और फ्राँस में एकत्रित होने लगा। अन्य देशों में सोने का अभाव उत्पन्न हो गया जिससे सोने की कीमतें बढ़ गईं और अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें गिरने लगीं। स्वर्णाभाव में अधिकांश देशों को स्वर्णमान का त्याग करना पड़ा।
3. **विश्वयुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियाँ:** युद्ध के समय बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उद्योगों तथा उत्पादन के साधनों की क्षमता में प्रसार होता है और मज़दूरों की कमी से मज़दूरी की दरें बढ़ जाती हैं किंतु युद्ध के पश्चात् कुछ समय के बाद यह दशा समाप्त हो जाती है। यह दशा अमेरिकी गृहयुद्ध और नेपोलियन के युद्धों के दौरान भी देखी गई थी। किंतु इस बार युद्ध में पूरे विश्व के सम्मिलित होने से मंदी विश्वव्यापी हो गई।
4. **उद्योगों का यंत्रीकरण और विज्ञानीकरण:** युद्धकाल में श्रम आपूर्ति कम होने से यंत्रीकरण बढ़ा जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई। किंतु यंत्रीकरण से ही बेरोज़गारी भी बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप आय में और क्रय क्षमता में ह्रास हुआ। अब समस्या यह थी कि इस बढ़े हुए उत्पादन को कहाँ खपाया जाए। अत: उद्योगधंधे और उत्पादन इकाइयाँ बंद होने लगीं।
5. **आर्थिक राष्ट्रवाद:** विश्वयुद्ध के पश्चात् सभी देशों ने मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग करते हुए संकीर्ण आर्थिक राष्ट्रवाद की नीति का अवलंबन किया। यूरोपीय राष्ट्र जहाँ ऋण भुगतान के लिये अपना निर्यात बढ़ाना चाहते थे वहीं अमेरिका जैसे सुदृढ़ राष्ट्र सीमा शुल्क बढ़ाकर और आयात की मात्रा निश्चित करके आयात को हतोत्साहित कर रहे थे। हितों की इस विपरीत धारणा से विश्व व्यापार निम्नतम स्तर पर पहुँच गया।
6. **तात्कालिक कारण:** अमेरिकी शेयर बाज़ार में 1929 में सट्टेबाजी का तीव्र दौर आया जो अक्टूबर में अपने चरम पर पहुँच गया था। इस प्रवृत्ति से अमेरिकी पूंजीपतियों ने यूरोप के पुनर्निर्माण में निवेश को छोड़कर अपनी पूंजी अमेरिका में ही निवेशित करना प्रारंभ कर दिया जिससे यूरोपीय अर्थव्यवस्था संकट में आ गई।

   इसी दौरान 23 अक्टूबर, 1929 को अमेरिकी शेयर बाज़ार वाल स्ट्रीट में तीव्र गिरावट प्रारंभ हुई। इसी घटना को मंदी की शुरुआत माना जाता है क्योंकि इसके फलस्वरूप अमेरिकी पूंजीपतियों का दिवाला निकल गया और उनके बैंक दिवालिया हो गए। यहीं से यूरोप में किया जाने वाला निवेश भी समाप्त हो गया जिसका परिणाम ऑस्ट्रिया के 'क्रेडिट आंसटाल्ट' बैंक के दिवालिया होने में देखा जा सकता है। जर्मन पूंजीपतियों के अविश्वास और पूंजी निकालने से

अध्याय

10

फासीवाद और नाज़ीवाद (Fascism and Nazism)

जब 1917 की बोल्शेविक क्रांति की सफलता के बाद रूस में साम्यवादी सत्ता की स्थापना हो रही थी, उसी समय इटली में फासीवाद तथा जर्मनी में नाज़ीवाद का आविर्भाव हो रहा था। अधिनायकवादी तंत्र पर आधारित फासीवादी एवं नाज़ीवादी विचारधाराएँ स्वरूप एवं प्रकृति में साम्यवाद विरोधी थीं तथा इसमें जनता की स्वतंत्रता, समानता एवं अधिकारों का लेशमात्र भी सम्मान नहीं था।

प्रादेशिक लाभ के प्रलोभन में पड़कर इटली ने प्रथम विश्वयुद्ध में मित्रराष्ट्रों का पक्ष लेकर प्रवेश किया था। इस संबंध में 1915 की लंदन की गुप्त संधि के तहत इटली को व्यापक प्रादेशिक लाभ का वचन मित्रराष्ट्रों द्वारा दिया गया था। परंतु युद्ध समाप्ति के बाद हुए पेरिस सम्मेलन में इटली को सम्मानित स्थान नहीं मिल पाया। इटली की जनता इस विजय से प्रसन्न नहीं थी। वर्साय की संधि से इटली अपना इच्छित प्रादेशिक भू-भाग प्राप्त नहीं कर सका। उसे दक्षिणी टिरोल, ट्रेंटिनों एवं डाल्मेशियन तट के कुछ भू-भाग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिला। इटली की बाल्कन क्षेत्र तथा अफ्रीका में साम्राज्य विस्तार की आकांक्षा पूर्ण न हो सकी। इटली में सर्वाधिक असंतोष का कारण था– फ्यूम बंदरगाह की प्राप्ति न हो पाना। इटली के नेता निराशा एवं क्षोभ की भावना लेकर पेरिस से वापस लौटे। युद्ध के कारण हुई अपरिमित आर्थिक क्षति ने भी इटली की अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ दी। घोर आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था। विदेशी कर्ज़ के कारण इटली की अर्थव्यवस्था चरमरा गई। देश में उद्योग-धंधे एवं व्यवसाय ठप पड़ गए थे और बेकारी की समस्या ने गंभीर रूप धारण कर लिया था। इस विषम परिस्थिति में विभिन्न राजनीतिक दल सक्रिय हो गए। समाजवादियों द्वारा मज़दूरों एवं कृषकों को पूंजीपतियों एवं ज़मींदारों के विरुद्ध भड़काया गया। इटली की तत्कालीन सरकार इस अराजकता वाली स्थिति को नियंत्रित करने में नाकाम हो रही थी। इस परिस्थिति में एक गृहयुद्ध की संभावना बन रही थी। चूँकि तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में उभरती हुई समाजवादी शक्तियों में शासन का कार्यभार सँभालने की क्षमता नहीं थी, इसलिये इटली में नेतृत्व के लिये एक नवीन दल का मार्ग प्रशस्त हो गया। शीघ्र ही इटली में राष्ट्रवादियों की शक्ति ज़ोर पकड़ने लगी तथा देश के सभी असंतुष्ट वर्ग उसके झंडे तले एकत्रित होने लगे। इस फासिस्ट शक्ति ने मुसोलिनी के नेतृत्व में एक निश्चित एवं परिपक्व स्वरूप धारण किया।

10.1 मुसोलिनी एवं उसकी फासीवादी नीतियाँ *(Mussolini and his Fascist Policies)*

एक अध्यापक से उन्नति करके बेनिटो मुसोलिनी इटली का प्रधानमंत्री बना एवं एक नवीन राजनीतिक चिंतन के रूप में फासीवादी विचारधारा को स्थापित किया। मुसोलिनी ने तत्कालीन स्थितियों का लाभ उठाकर इटली में फासी संस्थाओं का निर्माण किया एवं अंत में सम्राट को भयभीत कर 1922 में इटली का प्रधानमंत्री बन गया।

मुसोलिनी का जन्म 1885 में इटली के एक छोटे-से गाँव में हुआ था। उच्च शिक्षा के लिये वह स्विट्ज़रलैंड गया। स्विट्ज़रलैंड में समाजवादियों के विचारों से प्रभावित होकर मुसोलिनी समाजवाद की ओर आकर्षित हुआ। वहाँ उसने एक मज़दूर संघ का गठन एवं हड़ताल का अयोजन कराया। इटली वापस आकर मुसोलिनी ने समाजवादी आंदोलन को प्रोत्साहन दिया। 1912 में प्रसिद्ध 'अवंति' नामक समाजवादी समाचार-पत्र का संपादन किया। परंतु समाजवाद के इतने बड़े पोषक होने की मुसोलिनी की यह प्रवृत्ति लंबे समय तक कायम नहीं रह सकी। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मुसोलिनी की समाजवाद विषयक विचारधारा एकदम उलट गई। मुसोलिनी की यह इच्छा थी कि इटली मित्रराष्ट्रों का पक्ष लेकर युद्ध में शामिल हो जाए ताकि विजय की स्थिति में ऑस्ट्रिया के अधीन वाले इटली के प्रदेश प्राप्त हो जाएँ। प्रथम विश्वयुद्ध में मित्रराष्ट्रों की तरफ से इटली के शामिल होने संबंधी मुसोलिनी का यह विचार साम्यवादियों के विचार से बिल्कुल ही भिन्न था क्योंकि साम्यवादी युद्ध के बिल्कुल विरुद्ध थे। यही कारण था कि मुसोलिनी एवं साम्यवादियों में खटास उत्पन्न हो गई। अब मुसोलिनी

अध्याय
11

द्वितीय विश्वयुद्ध
(Second World War)

1 सितंबर, 1939 को जर्मनी द्वारा पोलैंड पर आक्रमण के साथ ही घटनाओं का वह सिलसिला शुरू हुआ, जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध को व्यापक आधार प्रदान किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध वर्साय संधि की कठोरता, विश्वव्यापी आर्थिक मंदी, तानाशाही राजनीति, इंग्लैंड की तुष्टीकरण की नीति, शस्त्रीकरण, शक्ति-संतुलन की गड़बड़ी जैसे कुछ मूलभूत कारणों का समन्वित परिणाम था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद गंभीर आर्थिक समस्याओं एवं विषाक्त राजनीतिक परिदृश्य के रूप में उभरती चुनौतियों का सामना करने में अंतर्राष्ट्रीय संगठन 'राष्ट्रसंघ' सफल नहीं हो सका। संदेह एवं शक्ति-संतुलन की राजनीति में कोई भी देश एक-दूसरे के ऊपर विश्वास करने को किसी भी हालत में तैयार नहीं था। संयोग से यूरोपीय राजनीति में इटली एवं जर्मनी में क्रमशः मुसोलिनी एवं हिटलर जैसे तानाशाहों के अधीन सत्ता स्थापित हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बारे में एक धारणा जो प्रचलित है वह यह कि द्वितीय विश्वयुद्ध एक प्रतिशोधात्मक युद्ध था। इसमें कोई दो राय नहीं कि 1919 के पश्चात् विभिन्न यूरोपीय देशों में अधिनायकवादी तंत्र अस्तित्व में आए, जो इस बात की पुष्टि करता है कि ये देश अपने अपमान का बदला लेने के लिये तैयार थे। इन सभी कारणों के समन्वित परिणाम से द्वितीय विश्वयुद्ध अवश्यंभावी हो गया।

11.1 द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण *(Causes of Second World War)*

यह कहना बिल्कुल जायज़ है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बीज 1919 के पेरिस शांति समझौते में अंतर्निहित थे। इस सम्मेलन में जर्मनी के साथ अपमानजनक, कठोर एवं आरोपित वर्साय की संधि की गई थी और यह बात तो निश्चित ही थी कि जर्मनी इन कठोर शर्तों को लंबे समय तक नहीं खींच सकता था। शस्त्रों की होड़, उग्र राष्ट्रवादी भावनाएँ एवं राष्ट्रसंघ की कमज़ोरी जैसे कुछ ऐसे निर्णायक कारक भी थे, जिन्होंने परिस्थिति को द्वितीय विश्वयुद्ध में परिवर्तित कर दिया।

इस विश्वयुद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(i) वर्साय संधि की त्रुटियाँ: वर्साय की संधि में ही द्वितीय विश्वयुद्ध के बीज निहित थे। पेरिस शांति संधि के समय यह बात खुलकर सामने आई कि वर्साय संधि द्वारा एक ऐसे विष वृक्ष का बीजारोपण किया जा रहा है जो जल्द ही भयंकर विनाशलीला को दस्तक देगा एवं इसका फल समस्त मानव जगत को भुगतना पड़ेगा। वस्तुतः जर्मनी के साथ की गई वर्साय की संधि में वुडरो विल्सन के आदर्शवादी सिद्धांतों की सर्वथा उपेक्षा की गई थी। पराजित जर्मनी के समक्ष आरोपित, अपमानित एवं कठोर संधि को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं था। इस स्थिति में जर्मनी के लिये यही बुद्धिमानी थी कि वह वर्साय संधि के इस कड़वे घूँट को पी जाए। गौरतलब है कि इस संधि ने जर्मनी को सैन्य एवं आर्थिक दृष्टिकोण से पंगु बना दिया। जर्मनी से अल्सास-लॉरेन के क्षेत्र एवं श्लेसविग के छोटे राज्य छीन लिये गए थे, पोलैंड गलियारा निर्मित कर जर्मनी का विच्छेद कर दिया गया था, उसे अपने सभी उपनिवेशों से हाथ धोना पड़ा, सार क्षेत्र की प्रसिद्ध खानों से 15 वर्षों के लिये वंचित कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त जर्मनी को आर्थिक साधनों से वंचित कर उस पर क्षतिपूर्ति की भारी रकम थोप दी गई एवं उसे वसूलने के लिये कठोर प्रावधान अपनाए गए। फ्राँस द्वारा जर्मनी के प्रसिद्ध 'रूर क्षेत्र' पर अधिकार कर लिया गया। इस रूर क्षेत्र में जर्मन जनता के साथ घोर अत्याचार किया गया। यद्यपि जर्मनी भीषण आर्थिक संकट से घिरा हुआ था, फिर भी क्षतिपूर्ति के मामलों में उस पर कोई दया नहीं दिखाई गई। जर्मनी पर निरस्त्रीकरण जैसी कठोर शर्तें लाद दी गईं तथा मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी को यह आश्वासन दिया कि वे अपने आयुध भंडार में कमी करेंगे, हालाँकि इस दिशा में उनका प्रयास नगण्य रहा। इस तरह जर्मनी को हर दृष्टि से अपमानित करने का प्रयास किया गया। अतः यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह चुप रहकर इन अपमानों को सहन करता रहेगा। मित्रराष्ट्र भी इस बात को भलीभाँति समझते थे कि जैसे ही जर्मनी को मौका मिलेगा, वह इस अपमान को धोने का प्रयास अवश्य करेगा। इसी संबंध में प्रसिद्ध

अध्याय 12

1949 की चीनी क्रांति (The Chinese Revolution of 1949)

चीनी जनता में तत्कालीन मंचू राजवंश के प्रति असंतोष एवं विरोध की भावनाओं ने जड़ पकड़ ली थी। यह बात लोगों के सामने स्पष्ट रूप से आ चुकी थी कि विदेशी शोषण एवं देश की तत्कालीन समस्याओं के लिये मंचू सरकार ही दोषी है। मंचू सरकार की कमज़ोरी का ही प्रतिफल था कि चीन को चीन-जापान युद्ध एवं बॉक्सर विद्रोह के मौके पर विदेशी शक्तियों के समक्ष झुकना पड़ा था। यद्यपि औपचारिक दृष्टि से चीन किसी विदेशी शक्ति का उपनिवेश नहीं था, परंतु इसके बावजूद इसकी स्थिति किसी दूसरे परतंत्र देश से बेहतर नहीं थी। चीन में विभिन्न विदेशी शक्तियों द्वारा व्यापक लूट-खसोट का दौर चल रहा था। तत्कालीन चीनी सरकार पर दबाव डालकर विभिन्न देशों ने अपने हितों में कई रियायतें प्राप्त कर ली थीं। इन रियायतों की आड़ में ही इन विदेशियों द्वारा शोषण का सिलसिला प्रारंभ हुआ। ब्रिटेन ने अपने स्वार्थों की रक्षा हेतु चीन में अफीम के सेवन को पर्याप्त रूप से बढ़ा दिया तथा इस आधार पर चीनियों का भरपूर उत्पीड़न किया गया। इन शोषणकारी व्यवस्थाओं के विरुद्ध जनमानस में आक्रोश की भावना का विकास हुआ तथा इसी परिप्रेक्ष्य में 1911 ई. की चीनी क्रांति का सूत्रपात हुआ। इस क्रांति का स्वरूप मुख्य रूप से सांस्कृतिक था तथा इसमें डॉ. सनयात सेन की मुख्य भूमिका रही थी। सनयात सेन के ही प्रयत्नों से 'राष्ट्रवादी चीनी पार्टी' की स्थापना हुई, जिसे 'कुओमितांग' के नाम से जाना जाता है।

1911 की चीनी क्रांति के बाद मंचू राजवंश का अंत हो गया एवं गणतांत्रिक शासन स्थापित किया गया। इस शासन व्यवस्था के तहत युआन-शी-काई ने अस्थायी राष्ट्रपति का कार्यभार सँभाला। वह कुओमितांग दल को अपना सबसे प्रबल विरोधी मानता था। इसी बात को ध्यान में रखकर उसने इस दल पर कई प्रतिबंध लगा दिये और 1913 में कुओमितांग दल को गैर-कानूनी भी घोषित कर दिया। इस तरह से कुछ समय के लिये चीन से कुओमितांग दल का प्रभाव खत्म हो गया। युआन-शी-काई पुनः मंचू सरकार की तर्ज पर निरंकुश सत्ता कायम करना चाहता था। 1916 ई. में युआन-शी-काई की मृत्यु के पश्चात् चीन में पुनः अराजकता का राज कायम हो गया। इस स्थिति में डॉ. सनयात सेन ने दक्षिणी चीन में कैंटन को राजधानी के रूप में स्थापित कर वहाँ कुओमितांग दल की सरकार को संगठित किया। कैंटन की इस सरकार ने स्वयं को चीन की असली सरकार घोषित किया, यद्यपि उसका आधिपत्य दक्षिणी चीन तक ही सीमित था। 1921 ई. में डॉ. सनयात सेन कैंटन की सरकार में राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। 1923 ई. में उन्होंने रूसी साम्यवादी सरकार के साथ परस्पर सहयोगात्मक संधि कर गणतांत्रिक सरकार बनाने का प्रयास किया। लेकिन 1925 में सनयात सेन की मृत्यु हो जाने के कारण उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। सनयात सेन के उत्तराधिकारी के रूप में च्यांग-काई-शेक को चीन के साम्यवादी दल के साथ गृहयुद्ध में फँसना पड़ा, जिसकी समाप्ति माओत्से तुंग के नेतृत्व में 1 अक्टूबर, 1949 को चीनी लोक गणराज्य की स्थापना के साथ हो पाई।

12.1 चीन में राष्ट्रीय चेतना का विकास *(Development of Nationalism in China)*

आज विश्व की एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित चीन को इस मुकाम तक पहुँचाने में साम्यवादी क्रांति प्रस्थान बिंदु के रूप में स्थापित है। किंतु सामंतवादी व्यवस्था से ग्रसित चीन में राष्ट्रवादी चेतना के विकास और साम्यवादी क्रांति तक की यात्रा में अफीम युद्धों, ताइपिंग विद्रोह, बॉक्सर विद्रोह और अंत में 1911 की क्रांति का अमूल्य योगदान निहित है।

19वीं सदी के मध्य तक चीन भी जापान की तरह ही शेष विश्व के लिये लगभग बंद था। चीनी समाज इस एकाकीपन के साथ-साथ अन्य की तुलना में स्वयं को श्रेष्ठ मानने की मनोवृत्ति से ग्रस्त था और चीन को ब्रह्मांड का केंद्र तथा अन्य जातियों को बर्बर समझता था। 'कैंटन' और 'मकाउ'- ये बंदरगाह ही वे खिड़कियाँ थीं जिनसे चीन के साथ सीमित संपर्क साधा जा सकता था।

अध्याय

13

शीतयुद्ध
(The Cold War)

शीतयुद्ध द्वितीय विश्वयुद्ध का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम था। शीतयुद्ध में हथियारों द्वारा प्रत्यक्ष विजय के विपरीत अन्य क्रियाकलापों और उपायों से प्रभुत्व विस्तार की नीति अपनाई जाती है। शीतयुद्ध मूलत: राष्ट्रों के मध्य व्याप्त तनाव की एक ऐसी स्थिति का द्योतक है, जिसमें दोनों पक्ष परस्पर शांतिकालीन कूटनीतिक संबंध बनाए रखते हुए भी शत्रुता की भावना रखते हैं। इस युद्ध में अपने पक्ष को प्रबल बनाने के लिये प्रचार-प्रसार, गुप्तचरों एवं षड्यंत्रों का सहारा लिया जाता है, अर्थात् यह प्रत्यक्षत: आमने-सामने किसी युद्ध के बिना एक वैचारिक संघर्ष, राजनीतिक अविश्वास, कूटनीतिक चालों, सैन्य प्रतियोगिता, गुप्तचर्या एवं मनोवैज्ञानिक संघर्ष की प्रक्रिया को इंगित करता है। 'शीतयुद्ध' शब्द का प्रयोग उस गहन विद्वेष एवं तनाव को संबोधित करने के लिये किया जाता है, जो सोवियत-अमेरिका संबंधों में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विकसित हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो गई थी कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में एक नवीन युग का प्रारंभ हो रहा था। तत्कालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उभरती हुई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की मूलभूत विशेषता थी- यूरोपीय कोर क्षेत्र के बाहर अनेक प्रभुत्व संपन्न राज्यों में शक्ति का वितरण जो दो महाशक्तियों- सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा नियंत्रित थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व राजनीति में पुराने शक्ति-संतुलन का विध्वंस हुआ एवं विश्व में केवल अमेरिका तथा सोवियत संघ प्रथम श्रेणी की महाशक्तियाँ रह गई थीं। युद्ध काल में इन दोनों महाशक्तियों ने मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर नाजीवाद एवं फासीवाद को समाप्त करने में सहयोग किया था। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् विश्व शांति, सुरक्षा एवं सहयोग के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण किया गया और संपूर्ण मानवता में यह संदेश गया कि उन्हें अब शांति एवं सुरक्षा तथा विकास की गारंटी मिल गई है, परंतु ऐसी आशा करना निर्मूल साबित हुआ। युद्धकालीन मित्र राष्ट्रों में शांति एवं सुरक्षा में सहयोग करने के स्थान पर द्वेष, ईर्ष्या, वैमनस्य एवं शक्ति के लिये शत्रुतापूर्ण प्रतियोगिता आरंभ हो गई। वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ के मध्य गहरा मतभेद द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम चरण में ही उत्पन्न हो गया था। युद्ध समाप्ति के पश्चात् तो मैत्री की सभी संभावनाएँ ही समाप्त हो गईं। दोनों महाशक्तियों में तीव्र तनाव एवं मतभेदों की विषम परिस्थिति सामने आई। दोनों के मध्य आरोपों-प्रत्यारोपों का भीषण दौर चला। यही स्थिति अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शीतयुद्ध के नाम से जानी जाती है। दोनों गुट एक-दूसरे को कूटनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि मोर्चों पर पराजित करने में जुट गए। इस प्रकार संपूर्ण विश्व में एक प्रकार का भय, संदेह एवं तनाव का वातावरण बन गया। फलत: विश्व में एक बार पुन: अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गई।

13.1 शीतयुद्ध के कारण *(Causes of the Cold War)*

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत संघ के रूप में दो महाशक्तियाँ उभरकर सामने आईं। ये दोनों महाशक्तियाँ युद्ध से प्राप्त लाभों को अपने-अपने पक्ष में करना चाहती थीं एवं अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना चाहती थीं। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के मार्ग में एक-दूसरे को बाधक समझती थीं। इस शीतयुद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

(i) ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में शीतयुद्ध का कारण 1917 की बोल्शेविक क्रांति में दिखाई देता है। 1917 की बोल्शेविक क्रांति के समय से ही पश्चिमी राष्ट्र सोवियत संघ को समाप्त करने का प्रयास कर रहे थे, क्योंकि साम्यवाद एक विश्वव्यापी आंदोलन के रूप में प्रस्तुत हुआ था, जिसका अंतिम उद्देश्य पूंजीवाद को समाप्त कर संपूर्ण विश्व में साम्यवाद का प्रसार करना था। ये पश्चिमी देश साम्यवादी सोवियत संघ को जर्मनी की अपेक्षा अधिक शक की दृष्टि से देखते थे। यही कारण है कि पश्चिमी देश हिटलर को सोवियत संघ पर आक्रमण करने हेतु प्रेरित करते रहे।

(ii) 1945 में याल्टा सम्मेलन में रूज़वेल्ट, स्टालिन एवं चर्चिल के बीच संपन्न समझौतों के तहत पोलैंड में सोवियत संघ द्वारा संरक्षित 'लुबनिन शासन' एवं पश्चिमी देशों द्वारा संरक्षित 'लंदन शासन' के स्थान पर स्वतंत्र तथा निष्पक्ष निर्वाचन

अध्याय 14

तृतीय विश्व एवं गुटनिरपेक्षता (Third World and Non-Alignment)

'तृतीय विश्व' शब्द का प्रयोग द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उपनिवेशी शोषण से स्वतंत्र हुए नवोदित राष्ट्रों के समूह के लिये किया जाता है। ये नवोदित राष्ट्र किसी गुट विशेष या सैनिक संधि से स्वतंत्र थे। तृतीय विश्व के अस्तित्व में आने का प्रथम संकेत 1947 में नई दिल्ली में आयोजित एशियाई संबंध सम्मेलन को माना जा सकता है। इसके पश्चात् 1955 के बांडुंग सम्मेलन ने इस समूह को विश्व राजनीति में एक स्पष्ट पहचान दिलवाई।

तृतीय विश्व के एक मंच पर आने का आधार था, दो अतिवादी व्यवस्थाएँ (धन लोलुप पूंजीवाद और अधिनायकवादी समाजवाद), जिनके पास भयानक विध्वंसात्मक शस्त्र भंडार थे। अत: उनसे पृथक् रहकर ऐसे विश्व का उदय क्यों न हो, जो स्वतंत्र हो, शांतिपूर्ण हो, गुटनिरपेक्ष हो, जिसमें न पूंजीवाद के दोष हों, न ही स्टालिनवाद के, जिसमें लोक-कल्याण का गुण हो और वह "आज स्वयं को अपने बल पर बचाए और कल संसार को अपने उदाहरण द्वारा बचाए।"

तृतीय विश्व, अफ्रो-एशियाई-लैटिन अमेरिका के नव स्वतंत्र देशों का समूह था, जो भौगोलिक रूप से किसी भी गुट के नज़दीक नहीं था। यह समूह गुटीय राजनीति को खतरनाक मानता था और स्वयं की आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र विदेश नीति में विश्वास रखता था। तृतीय विश्व अपने आरंभ के समय में विशुद्ध राजनीतिक अवधारणा थी, जिसकी उत्पत्ति गुटीय राजनीति के विरोध में हुई थी, किंतु परवर्ती काल में इसके साथ आर्थिक आयाम भी संलग्न हो गया, क्योंकि ये सभी देश निर्धनता, भूख, अशिक्षा से ग्रसित थे और स्वास्थ्य संकेतकों पर भी पिछड़े हुए थे, जिनके सुधार हेतु आर्थिक विकास उनकी प्राथमिक आवश्यकता थी और इसी कारण इनको विकासशील विश्व की संज्ञा भी दी जाती है।

यह समूह कट्टर विचारधारा से बँधने और किसी एक गुट के साथ लेन-देन एवं सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा व्यावहारिकता के अनुसार जहाँ से भी सहायता मिले, उसे स्वीकारने को तत्पर था। इसके अतिरिक्त यह कोई समरूप समूह न होकर विभिन्न महाद्वीपों, राजनीतिक व्यवस्थाओं और सांस्कृतिक रूप से भिन्न लोगों का समूह था।

इस समूह का योगदान था कि इसने दक्षिण-दक्षिण एवं उत्तर-दक्षिण संवाद को एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया और वैश्विक समस्याओं पर सिर्फ दो गुटों के अतिरिक्त एक तीसरी स्वतंत्र आवाज़ को प्रतिनिधित्व प्रदान किया। यही तृतीय विश्व संगठित रूप में गुटनिरपेक्षता के रूप में प्रकट हुआ।

गुटनिरपेक्षता

गुटनिरपेक्षता को तृतीय विश्व का एक औपचारिक आंदोलन कहा जा सकता है, जो कि उन देशों की राजनीतिक आकांक्षाओं, आर्थिक ज़रूरतों एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं को व्यक्त करता है।

गुटनिरपेक्षता को पश्चिमी विद्वानों ने सामान्यत: नकारात्मक रूप से परिभाषित करके इसके महत्त्व को कम आँकने की कोशिश की है और इसे अलगाववाद, अप्रतिबद्धता, तटस्थता, तटस्थीकरण, एक पक्षवाद और असंलग्नता के साथ जोड़ा है, जिससे इसके विश्व राजनीति से कटे होने, पलायनवादी होने तथा निष्क्रिय होने का भाव उत्पन्न होता है, किंतु यह न तो पूर्णरूपेण सत्य है और न ही गुटनिरपेक्षता के सभी पक्षों की अभिव्यक्ति। डॉ. राजन के अनुसार नकारात्मक अर्थ में यह सैनिक, राजनीतिक गठबंधनों की अस्वीकृति है, जबकि सकारात्मक अर्थ में इसे अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर जब भी वह सामने आए तब परिस्थितियों के अनुसार ही पूर्ण स्वतंत्रता का पालन करते हुए राष्ट्रहित में निर्णय लेने से माना है। वहीं जॉर्ज लिस्का जैसे विद्वान इसे "सही गलत में भेद करके सही पक्ष को समर्थन देने की नीति मानते हैं।"

गुटनिरपेक्ष आंदोलन के उद्देश्य

(i) शीतयुद्ध की राजनीति से स्वयं को पृथक् रखना।
(ii) सैन्य संगठन एवं सैन्य संधियों से स्वयं को पृथक् रखना।
(iii) राष्ट्रहित के पक्ष में स्वतंत्र विदेश नीति का पालन करना।

अध्याय 15

सोवियत संघ का विघटन
(Dissolution of the Soviet Union)

गोर्बाचोव युग के अंत के साथ ही सोवियत संघ का विघटन शुरू हो गया, परंतु यह समझना गलत होगा कि सोवियत संघ के विघटन एवं अवसान की ज़िम्मेदारी सिर्फ गोर्बाचोव की ही है। वास्तव में इस घटनाक्रम में किसी एक व्यक्ति से कहीं अधिक ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ ही निर्णायक भूमिका निभाती रहीं।

1917 की बोल्शेविक क्रांति की सफलता के फलस्वरूप रूस में सोवियत संघ नामक साम्यवादी देश का उदय हुआ। इस साम्यवादी व्यवस्था के अंतर्गत राजनीतिक एवं साम्यवादी संगठनों में समाजवादी विचारधारा को ही प्रधानता दी गई, जिसमें साम्यवादी-मार्क्सवादी दर्शन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। अतः नवीन स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि पूंजीवाद के पोषक देश एवं साम्यवादी देश एक-दूसरे को अपना जन्मजात शत्रु समझें। स्टालिन के समय में रूस में साम्यवादी दल की तानाशाही स्थापित हो गई। उसने बर्बरतापूर्वक अपने विरोधियों का दमन किया और इस रूप में अब सोवियत रूस जनतंत्र के हनन के केंद्र के रूप में सामने आया।

वास्तव में जब सोवियत सरकार स्थापित हुई थी तो लेनिन का यही विचार था कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयता एवं जातीयता वाले क्षेत्रों को आपस में मिलाकर एकीकृत रूस की स्थापना की जाए। लेनिन के इसी विचार का सम्मान करते हुए स्टालिन ने बहुराष्ट्रीयता एवं बहुजातीयता वाले संकीर्ण तत्त्वों को समाप्त कर एक एकीकृत मज़बूत सोवियत संघ की स्थापना की और सोवियत प्रतिष्ठा को स्थापित करने का प्रयास किया। इस व्यवस्था के तहत यह बात भी मान ली गई कि साम्यवादी व्यवस्था में संघ के सदस्य तथा हर राष्ट्रीय घटक का सर्वांगीण विकास संभव हो सकेगा। जो भी हो, वास्तविकता तो यही थी कि स्टालिन के शासनकाल में लगभग दो दशकों तक सोवियत संघ की एकता केंद्र सरकार के निर्मम बल प्रयोग वाले अनुशासन से ही बरकरार रह सकी थी। वस्तुतः यह भी स्पष्ट है कि अंतर्राष्ट्रीय जगत में निरंतर संकटग्रस्त रहने के कारण सोवियत रूस में राष्ट्रवाद को फैलाना संभव था, विशेष रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के क्रम में एवं शीतयुद्ध के शुरुआती चरण में। एक बड़ी समस्या यह भी थी कि केंद्रीय नियोजन वाली अर्थव्यवस्था में सोवियत संघ के विभिन्न हिस्सों को विकास का लाभ असंतुलित रूप से प्राप्त हुआ था। इस समय देश के विभिन्न हिस्सों को साम्यवाद की रक्षा हेतु एवं राष्ट्रहित में या अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे के बहाने बलिदान देने हेतु मजबूर होना पड़ता था। फलतः इस परिस्थिति में इन राज्यों में आक्रोश उत्पन्न होता था। केवल दमनकारी नीतियों के कारण इनकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती थी। स्टालिन युग की समाप्ति के पश्चात् ख्रुश्चेव के काल में भी वस्तुतः यह बात सामने नहीं आई कि सोवियत संघ के घटक राज्यों को अब राजनीतिक दृष्टि से स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर होने का कोई मौका मिलेगा।

मध्य एशियाई क्षेत्रों के बारे में यह कहा जा सकता है कि यहाँ उज़्बेकिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान एवं किर्गिस्तान के लोगों की जीवनशैली स्लाव देश के रूसियों से बिल्कुल ही अलग थी तथा ये लोग इस्लाम धर्म में आस्था रखते थे। अतः यह एक संवेदनशील मुद्दा बन गया एवं विशेषकर सांप्रदायिक तत्त्व सिर उठाने लगे। ये सांप्रदायिक तत्त्व किसी भी स्थिति में साम्यवाद पर भारी पड़ते थे। जॉर्जिया, अजरबैजान एवं चेचन्या में ये तत्त्व काफी सक्रिय रहे।

सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी ने आर्थिक विकास एवं सामाजिक पुनर्संरचना का जो विकल्प प्रस्तुत किया, वह सफल नहीं हो सका। ट्राटस्की ने तो स्टालिन की नीति को समाजवाद के साथ विश्वासघात के रूप में प्रसारित किया। साथ ही स्टालिन के पश्चात् ख्रुश्चेव के समय में भी स्टालिन की नीतियों का माओवादी चीन ने भी विरोध किया। यहाँ यह बात परिलक्षित होने लगी कि सोवियत संघ साम्यवादी क्रांतिकारी राज्य नहीं रह गया वरन् सुधारवादी एवं समझौतापरस्त शक्ति बन चुका है। इस प्रकार एक नया दृश्य सामने आया कि साम्यवादी सत्ता कमज़ोर होती गई। यह सत्य है कि सोवियत संघ के विघटन के लिये वहाँ का शीर्ष साम्यवादी नेतृत्व भी एक हद तक ज़िम्मेदार था। चूँकि सोवियत संघ में दल तथा राष्ट्र के बीच कोई अंतर नहीं था। अतः दल तथा राष्ट्र का नेतृत्व शीर्ष साम्यवादी नेता के हाथों में ही होता था। इस व्यवस्था में भाई-भतीजावाद एवं भ्रष्टाचार पनपा एवं इससे साम्यवादी सरकार बदनाम होने लगी।

अध्याय
16

साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद (Imperialism and Colonialism)

साम्राज्यवाद से आशय है, एक देश द्वारा दूसरे देश को अपने नियंत्रण में रखकर उसे अपने आर्थिक एवं राजनीतिक हितों की पूर्ति का साधन बनाना। इसमें राजनीतिक नियंत्रण की व्यवस्था प्रभावी होती है। उपनिवेशवाद, औपनिवेशिक राज्य के लोगों द्वारा विजित लोगों के जीवन तथा संस्कृति पर प्रभुत्व स्थापित करने की एक व्यापक व्यवस्था है। उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद से अधिक जटिल विषय है, क्योंकि यह उपनिवेशवाद के अधीन रह रहे मूल निवासियों के जीवन पर व्यापक प्रभाव डालता है। इसमें उपनिवेशी लोगों पर औपनिवेशिक शक्ति के लोगों का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रण होता है। साम्राज्यवाद के प्रसार हेतु सैन्य शक्ति का प्रयोग और युद्ध प्राय: अनिवार्य होता है, लेकिन वहीं उपनिवेशवाद में कोई ज़रूरी नहीं है कि सैन्य शक्ति अथवा युद्ध का रास्ता अपनाया ही जाए।

सामान्यत: कहा जा सकता है कि साम्राज्यवाद में जहाँ व्यापक क्षेत्र को एक ही राजनीतिक इकाई माना जाता है, वहीं उपनिवेशवाद केंद्रीय इकाई द्वारा अनेक पृथक् व स्पष्ट इकाइयों पर नियंत्रण एवं शासन स्थापित करने की प्रक्रिया है। दूसरा अंतर यह माना जा सकता है कि साम्राज्यवाद में नए भू-प्रदेश और भू-क्षेत्रों को प्राप्त करना स्पष्ट व प्रत्यक्ष होता है और तत्काल ही वहाँ साम्राज्यवादी देश की विधि एवं शासन व्यवस्था थोप दी जाती है, जबकि उपनिवेशवाद में प्रत्यक्ष नियंत्रण का प्राय: अभाव होता है और उपनिवेश में पहले से चली आ रही विधि व शासन व्यवस्था की विशेषताएँ स्वीकार की जाती हैं। तीसरा यह कि साम्राज्यवाद में नए प्रदेशों को पूर्णरूपेण आत्मसात् करने का प्रयास होता है और इन प्रदेशों के निवासियों को साम्राज्यवादी देश की सभ्यता, संस्कृति, जीवन मूल्य, राजनीतिक संस्थाएँ, आर्थिक नीतियाँ आदि अपनाने को बाध्य किया जाता है, जबकि उपनिवेशवाद में मूल निवासियों की सांस्कृतिक तथा सामाजिक विशेषताएँ जीवित रहती हैं। इसके अतिरिक्त साम्राज्यवाद में अधिकृत क्षेत्र का पूर्ण विलय हो जाता है, जबकि उपनिवेशवाद में राष्ट्रीयता के विकास के अवसर शिथिल होते हैं। साथ ही साम्राज्यवाद में साम्राज्य की रक्षा मात्र शक्ति द्वारा ही संभव हो पाती है, क्योंकि साम्राज्य के अनेक घटक स्वयं को ऐसी पृथक् इकाई मानते हैं, जिसकी राजनीतिक स्वायत्तता का बलपूर्वक हनन कर लिया गया है। सैद्धांतिक दृष्टि से साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद में उपरोक्त अंतर माने जा सकते हैं, परंतु व्यावहारिक दृष्टि से दोनों की प्रवृत्ति समरूप है। दोनों ही यहाँ पर एक जातीय समूह अथवा राजनीतिक इकाई पर नियंत्रण व प्रभुत्व के द्योतक हैं और दोनों में ही शक्तिशाली इकाई के द्वारा शक्तिहीन इकाई का शोषण किया जाता है। अत: साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को इन विभिन्नताओं के होते हुए भी एक-दूसरे से पूर्णत: पृथक्-पृथक् स्पष्ट अवधारणाओं के रूप में परिभाषित करना संभव नहीं है; कहीं-न-कहीं यह दोनों ही एक-दूसरे की विशिष्टताओं को न्यूनाधिक रूप में धारण करते हैं।

औपनिवेशिक प्रणाली *(Colonial system)*

यूरोपीय देशों में पुनर्जागरण से होने वाले ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के फलस्वरूप यूरोप नई दुनिया के अग्रदूत के रूप में प्रस्तुत हुआ। पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में प्रारंभ हुई भौगोलिक अन्वेषण की नवीन प्रवृत्ति के फलस्वरूप खोजे गए नए क्षेत्रों पर स्पेन तथा पुर्तगाल द्वारा उपनिवेशों की स्थापना की गई। 1492 में स्पेन के प्रसिद्ध नाविक कोलंबस द्वारा अमेरिका की खोज एवं पुर्तगाली नाविक वास्को-डि-गामा के प्रयास से 1498 में भारत की खोज ने इस दिशा में सार्थक पहल की। इसी प्रकार पुर्तगाल के एक नाविक मैगलन द्वारा फिलिपाइन द्वीप समूह की खोज की गई। इस खोज के क्रम में मैगलन ने पूरे विश्व का चक्कर लगाकर यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी गोल है। इन साहसिक समुद्री यात्राओं के फलस्वरूप नवीन भौगोलिक खोजों ने व्यापार में क्रांति ला दी एवं उपनिवेश बसाने की ऐसी नई धारा बही, जिसके कारण विश्व के इतिहास में एक नया मोड़ आ गया। इस क्रम में दूसरे यूरोपीय देश, जैसे- इंग्लैंड, फ्राँस एवं नीदरलैंड भी इस चुनौतीपूर्ण खोज की दौड़ में शामिल हुए। इस तरह विश्व के संपूर्ण भौगोलिक ज्ञान की नींव पड़ी एवं इन्हीं खोजों के आधार पर आगे चलकर विश्व के लगभग हर क्षेत्र पहली बार एक-दूसरे के नियमित संपर्क में आए। अभी तक इन भौगोलिक खोजों तथा स्थापित

अध्याय 17

औपनिवेशिक शासन से मुक्ति (Freedom from Colonial Rule)

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की जकड़न में फँसे राष्ट्रों के स्वतंत्र होने की प्रक्रिया तीव्र हुई, जिससे विश्व राजनीति में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के नव-स्वतंत्र देश अस्तित्व में आए। इन नव स्वतंत्र देशों में से अधिकांश किसी गुट विशेष में सम्मिलित नहीं हुए बल्कि इन्होंने गुटनिरपेक्षता की नीति का अवलंबन किया और तृतीय विश्व का भाग बने।

17.1 विउपनिवेशीकरण के कारण *(Causes of Decolonisation)*

1. **साम्राज्यवाद का कमज़ोर होना:** द्वितीय विश्वयुद्ध ने फासीवाद की समाप्ति के साथ-साथ यूरोप के साम्राज्यवादी देशों को भी कमज़ोर कर दिया। युद्ध के दौरान इन देशों की सैन्य-शक्ति, अर्थव्यवस्थाएँ छिन्न-भिन्न हो गई थी। फलतः इनमें से कोई भी देश अब बड़ी शक्ति के रूप में नहीं रहा।

   दूसरी ओर, पूर्वी यूरोप में समाजवादी सरकारों की स्थापना से भी यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियाँ चरमरा गईं। वर्तमान वातावरण में अब साम्राज्यवाद को श्रेष्ठ सभ्यता की निशानी नहीं माना गया बल्कि उसे शोषण का पर्याय कहा गया। 1956 में जब ब्रिटेन ने फ्राँस एवं इज़राइल के साथ मिलकर मिस्र पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन में ही व्यापक स्तर पर सरकार विरोधी प्रदर्शन किये गए।

2. **उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों की एकता:** उपनिवेशों में साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के प्रति असंतोष अब अधिक तीव्रता से व्यक्त होने लगा। एक देश के स्वतंत्रता आंदोलन का दूसरे देश पर प्रेरणादायक प्रभाव पड़ा तथा इनके नेतृत्वकर्त्ता आपसी संपर्क एवं समन्वय को भी बढ़ा रहे थे। जैसे हिंदचीन में स्वतंत्रता आंदोलन के दमन हेतु भारतीय सैनिकों को भेजे जाने पर भारत में ब्रिटिश विरोधी तथा हिंदचीन समर्थक प्रदर्शन तथा हड़तालें हुईं।

   नव-स्वतंत्र देशों की एकजुटता ने भी उपनिवेशवाद की समाप्ति में सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया। इसके लिये इन देशों द्वारा राष्ट्रमंडल, संयुक्त राष्ट्रसंघ और गुटनिरपेक्ष आंदोलन जैसे मंचों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया।

3. **संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका:** संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ ही विश्व में आत्मनिर्णय, राष्ट्रीय संप्रभुता तथा समानता एवं राष्ट्रों के बीच सहयोग जैसे विचारों का बोलबाला कायम हो गया। संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र तथा मानवाधिकारों की घोषणा ने उपनिवेशों में स्वतंत्रता की आकांक्षा को बलवती किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ, जो कि स्थापना के साथ ही उपनिवेशवाद के विरोध में था; जैसे-जैसे उसमें पूर्व उपनिवेशवाद से पीड़ित देशों की संख्या बढ़ रही थी वह साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के अंत में अधिकाधिक सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने लगा।

4. **द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव:** युद्ध के दौरान जापान द्वारा यूरोपीय राष्ट्रों को पराजित करने से यूरोपियन सेनाओं की अपराजेयता का मिथक टूटा, जिसका सर्वाधिक प्रभाव दक्षिण-पूर्व एशिया में दिखा, जहाँ जापानी सेना के आत्मसमर्पण के पश्चात् यहाँ के राष्ट्रवादी, स्वतंत्रता आकांक्षी समूहों ने छापामार युद्ध प्रणाली का प्रयोग कर साम्राज्यवादी शक्तियों को अत्यधिक क्षति पहुँचाई।

   द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1941 में घोषित अटलांटिक चार्टर में राष्ट्रीय स्वतंत्रता, अस्तित्व तथा आत्मनिर्णय जैसे शब्दों को अत्यधिक महत्त्व व लोकप्रियता मिली। जब अमेरिकी राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने यह स्पष्ट कर दिया कि- "अटलांटिक चार्टर मात्र जर्मनी के शिकार लोगों पर ही नहीं बल्कि विश्व के सभी लोगों पर लागू होता है।" तो इसने उपनिवेशों को अपनी स्वतंत्रता के पक्ष में विश्व की प्रमुख शक्तियों के खड़े होने का एहसास दिलाया और वे अधिकाधिक स्वतंत्रता के लिये छटपटाने लगे। हालाँकि अमेरिका जैसी शक्ति का यह समर्थन उसके स्वहितों से ही प्रेरित था और ये हित थे- इन उपनिवेशों में साम्यवादी प्रसार का भय यदि वह (पूंजीवादी अमेरिका) समर्थन नहीं करता है तो और साथ ही यदि ये उपनिवेश स्वतंत्र हुए तो वहाँ अपना राजनीतिक-आर्थिक प्रभाव बढ़ाने का लालच भी अमेरिका को था।

अध्याय 18

प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व
(Major International Personalities)

अब्राहम लिंकन *(Abraham Lincoln)*

12 फरवरी, 1809 को जन्मे अब्राहम लिंकन ने अपने जीवन की शुरुआत स्टोरकीपर के रूप में की थी। 1861 ई. में अमेरिकी राष्ट्रपति पद पर आसीन होते ही लिंकन ने दास-व्यवस्था को समाप्त कर दिया। लिंकन ने अपने प्रयासों तथा कूटनीतिक कौशल से गृहयुद्ध (1865) को समाप्त किया, किंतु 15 अप्रैल, 1865 को जॉन बिस्कस बूथ द्वारा लिंकन की हत्या कर दी गई। न्याय, निष्पक्षता एवं ईमानदारी के कारण उन्हें 'ऑनेस्ट एबि' (Honest Abe) की उपाधि प्रदान की गई थी।

एडोल्फ हिटलर *(Adolf Hitler)*

20 अप्रैल, 1889 को ऑस्ट्रिया में हिटलर का जन्म हुआ था। वह एक अच्छा कार्टूनिस्ट था तथा अपने शुरुआती दिनों में ऑस्ट्रिया में चित्र बनाया करता था। एडोल्फ हिटलर प्रथम विश्वयुद्ध काल में जर्मनी की सेना में शामिल हुआ, परंतु जब युद्ध में जर्मनी की पराजय एवं वर्साय की अपमानजनक संधि हुई तो उसने जर्मन राष्ट्रवादियों को संगठित किया तथा 1933 में जर्मनी का चांसलर बन गया।

उसने नाजी पार्टी को संगठित किया तथा वर्साय की संधि की एक-एक शर्तों को तोड़ना शुरू किया, जिसका परिणाम हमें द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में देखने को मिला। 30 अप्रैल, 1945 को बर्लिन के एक बंकर में मित्र राष्ट्रों की सेना से घिरे हिटलर ने आत्महत्या कर ली। उसने अपनी आत्मकथा 'मीन कैंप' जेल में लिखी।

जोसेफ स्टालिन *(Joseph Stalin)*

इनका जन्म 18 दिसंबर, 1878 को जॉर्जिया में हुआ था। 1917 की रूसी क्रांति की सफलता के पश्चात् सत्ता में आए बोल्शेविक पार्टी से संबंधित बोल्शेविक सेंट्रल कमेटी के जनरल सेक्रेटरी बने। 1924 में लेनिन की मृत्यु के पश्चात् वे रूस के प्रधानमंत्री बने। प्रधानमंत्री के रूप में स्टालिन ने कठोर शासन स्थापित किया। 1941 में हिटलर द्वारा रूस पर आक्रमण किये जाने के कारण स्टालिन ने रूस को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंक दिया। 5 मार्च, 1953 को उनकी मृत्यु हो गई।

कार्ल मार्क्स *(Karl Marx)*

इनका जन्म 5 मई, 1818 को हुआ था। उन्होंने पेरिस के कोलोन शहर में एक लेखक के रूप में कार्य किया, जहाँ वे वामपंथी विचारधारा से प्रभावित हुए। मार्क्स ने लंदन में वामपंथी दल के लिये **कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो** तैयार किया। मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद की आधुनिक परिकल्पना प्रस्तुत की तथा सर्वहारा वर्ग को पूंजीपतियों के विरुद्ध उकसाया। उन्होंने सर्वहारा वर्ग का आह्वान करते हुए कहा कि 'दुनिया के मज़दूरों एक हो जाओ।' इन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक 'दास कैपिटल' लिखी। मार्क्स की विचारधारा को लेनिन ने पूर्ण रूप दिया और फिर लेनिन से माओ ने प्रेरणा ग्रहण की।

लियोनार्दो द विंची *(Leonardo da Vinci)*

बहुमुखी प्रतिभा के धनी लियोनार्दो द विंची पुनर्जागरणकालीन इटली के एक महान चित्रकार, मूर्तिकार, डॉक्टर, वैज्ञानिक और इंजीनियर थे। इन्होंने सर्वप्रथम प्रकाश तथा छाया का संतुलित प्रयोग किया। उनके सर्वोत्कृष्ट चित्र-'मोनालिसा' तथा 'द लास्ट सपर' में यह संतुलन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उन्होंने हवाई जहाज़ एवं पनडुब्बी की कल्पना करते हुए भी चित्र बनाए।

माओ त्से-तुंग *(Mao Tse-Tung)*

माओ त्से-तुंग का जन्म 26 दिसंबर, 1893 को चीन के हुनान प्रांत के शाओशन कस्बे में हुआ था। वे चीनी क्रांतिकारी, राजनीतिक विचारक एवं साम्यवादी दल के नेता थे, जिनके नेतृत्व में चीन की क्रांति सफल रही। उन्होंने 1949 में 'जनवादी

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- क्विक रिवीजन हेतु प्रत्येक अध्याय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 8750187501, 011-47532596